आदर्श वाणी

और

उमास्वामी श्रावकाचार

संग्रहकर्ता

१०८ मुनिश्री वृषभसागरजी महाराज
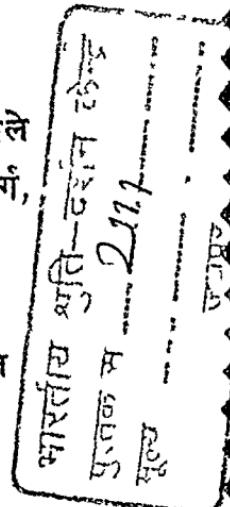
पुस्तक मिलने का पता

सेठ पारसदास श्रीपाल मोटर वाले
रंगमहल, श्यामाप्रसाद मुखर्जी मार्ग,
दिल्ली-६

श्री हरीचन्द प्रकाशचन्द्र गोटे वाले
किनारी बाजार,
दिल्ली-६

जैन साहित्य सदन
दि० जैन लाल मन्दिरजी, चांदनी चौक,
दिल्ली-६

प्रकाशक

जैन साहित्य सदन
जैन लाल मन्दिर, चादनी चौक,
दिल्ली-६
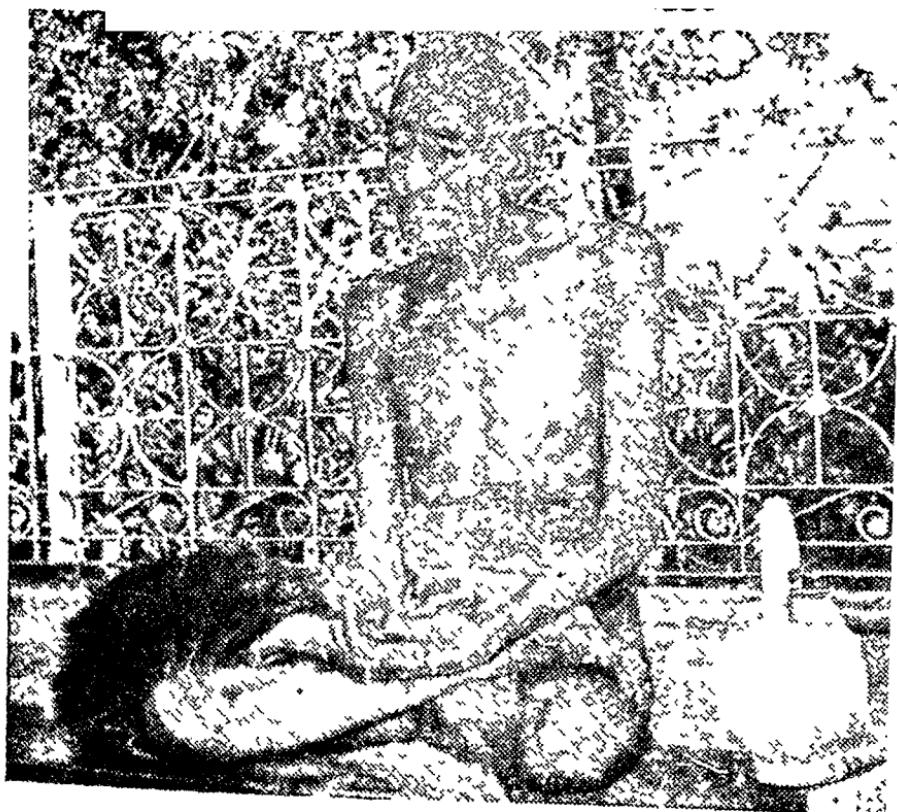
वीर निर्वाण सवत् २५०१
प्रथम बार २२००

मूल्य
स्वाध्याय

१०८ मुनिश्री वृषभसागरजी महाराज

आदर्श वाणी का परिचय—

मगल करता वृषभ सिन्धु वीर चौबीस जिनेश्वरं ।
जिनवाणी सुख मूल समझ कर नमत सुरेश्वरं ॥
शाति वीर गुरु शिवसागर के चरण कमल में ।
नमन करूं शतवार रखू पग मोक्ष महल में ।
स्वयं पढो औरो को पढाओ हो निश्चल कल्याण ।
महा पुरुषो की वाणी सुनकर होय आत्म उत्थान ॥

अनादि काल से इस ससार मे अनते जीव भ्रमण करते जन्म-मरण के भारी दु ख उठा रहे है, उनकी लम्बी कहानी है । भगवान जिनेन्द्रदेव ने उन दु खो से छूटने का विवेचन अपनी दिव्य ध्वनि मे वर्णन किया है श्री गणधर देवो ने जैन शास्त्रो मे गूथ कर रक्खा है उन शास्त्रो से इस आदर्शवाणी मे भव्य जीवो के हित के लिये आत्म कल्याणकारी अज्ञान रूपी अधकार दूर करने को रत्नत्रय धर्म का सग्रह किया है । इस पुस्तक का जो सृज्जन स्वाध्याय करेंगे, मनन करेगे, अपनी आत्मा मे धारण करेंगे, वे निश्चय ही ससार के दु'खो से छुटेगे । क्योकि इसमे अनेक कल्याणकारी विषयो का वर्णन किया है ।

इस प्रकार यह ग्रन्थ पाठको के लिये परम उपयोगी होगा ।

सग्रहकर्ता—
मुनिश्री वृषभसागर

दो शब्द

पूज्य श्री १०८ मुनि वृषभसागर जी महाराज के आशीर्वाद से यह पुस्तक आदर्श वाणी पाठको के और दानी महानुभावो के अनुरोध से ३ वार छपी है। इस पुस्तक मे श्री मुनि वृषभसागर जी ने वहुत ही उपयोगी धार्मिक पाठ उपदेश आदि सग्रह किया है और आखिर मे उमास्वामी श्रावकाचार हिन्दी मे दिया गया है। यह श्रावकाचार प्रथम सस्कृत श्लोको के साथ महावीरजी से पूज्य श्री ज्ञानमती माता जी ने छपवाया था। इसको उपयोगी समझ कर इस पुस्तक मे दिया गया है। आशा है भव्य प्राणी पाठक गण इस पुस्तक से लाभ उठायेंगे।

इस पुस्तक मे निम्न महानुभावो ने दान दिया है उनको वार-वार धन्यवाद है तथा यह पुस्तक दो प्रेस मे शीघ्र छपवाने के कारण छपवाई है उनको भी धन्यवाद देता हू।

आदर्श वाणी मे दान देनेवाले महानुभावो की सुची

१ श्री जयकुमार जिनेन्द्र कुमार, मुबारिक पुर, (मुज्जफर नगर)
२ श्री इन्द्रा देवी, १८, बनारसीदास इस्टेट, लखनऊ रोड, देहली
३ श्री इन्द्रसैन धन प्रकाश, नई मण्डी, मुज्जफर नगर
४ श्री सुमत प्रशाद जैन, जैन मन्दिर भोगल, देहली
५ सेठ धूमसैन सुदेश चन्द, १८२ ए, पोष्ट गली मगलदास मार्केट, वम्वई न० २
६ ला० शिखरचन्द्र, दरयागज, देहली
७ श्री विमल प्रसाद जैन, मन्सूरपुर वाले ५६, कृष्णा पुरी, धर्मपत्नी रुहती देवी, मुज्जफर नगर
८ वावू ज्योती प्रसाद, टायप वाले, देहली
९ वावू ज्योती प्र साद जी की सुपुत्री, देहली
१०. श्री रामस्वरूप सतीश कुमार, साडी भडार, चादनी चौक, देहली
११ श्री वा० नेमचन्द्र जी, इन्कमटक्स आफिसर

सेठ पारस दास जी जैन मोटर वाले (देहली)

सेठ श्रीपाल जी जैन सुपुत्र सेठ पारसदास जी जैन
मोटरवाले (देहली)

१२ श्री राधामोहन रामचन्दजैन, आरा मशीन डाल्टनगज, पलामू (विहार)
१३. गुप्त दान वैद्यवाडा, देहली
१४ श्रीमती राजराणी जैन धर्मपत्नी महेन्द्रकुमार जी, वैद्यवाडा, देहली
१५ श्री वकील माहव, अम्बाला शहर
१६ श्रीमान ला० पारसदास श्रीपाल जैन मोटर वाले, नोवल्टी, दिल्ली
१७ श्रीमती मायावती जैन धर्मपत्नी रघुनाथप्रसाद, गाधी नगर, दिल्ली
१८ ला० किशोरीलाल ओमप्रकाश जैन मित्तल, हेलीमण्डी, (गुडगावा)
१९. ला० ताराचन्द्र चौधरी दिल्ली मार्फत तरख राम दलीप सिंह
२० श्रीमती विमलादेवी जैन धर्मपत्नी ला० शीलचन्द्र सर्राफ, चादनी चौक, दिल्ली
२१. ला० मदन गोपाल जैन, के ३३, माडल टाउन, दिल्ली
२२ ला० रोशन लाल हरक चन्द जैन, कपडे के थोक व्यापारी, कटरा शहनशाही, चादनी चौक, दिल्ली
२३. श्रीमती रेशमबाई, धर्मपत्नी स्व० चन्दगीराम जी, रूपनगर, दिल्ली
२४ श्रीमती चन्द्रकाता देवी, धर्म पत्नी पारस दास जी, २१-ए, रेवती भवन, दरियागज, दिल्ली
२५ श्री सेठ मानकचन्द पालीवाल, कम्पाउंड ३३, कोटा छावनी
२६ श्रीमती सत्यवती धर्मपत्नी ला० रतन चन्द फोटू वाले, १८९६, चादनी चौक, देहली-६
२७ . श्रीमती कमलरानी धर्मपत्नी श्री सुशीलकुमार, गली अहीरान, पहाडी धीरज, दिल्ली
२८ श्रीमती छिगनीबाई लुहाडिया, धर्मपत्नी सेठ आनन्दी लाल, बोहराज वाले, जयपुर मार्फत बा० सोभागमल जी पाटनी
२९ श्रीमती शान्ती देवी, शक्ति नगर, देहली
३० श्रीमती कुसम बाई जैन, धर्मपत्नी स्व० फूलचन्द मार्फत रामवीर कम्पनी, बम्बई-४
३१ श्री जम्बू प्रसाद विमल कीर्ति जैन, सब्जी मडी, देहली

—राधा मोहन

अनुक्रमणिका

मोक्षमार्ग

मोक्ष जाने का नुसखा, असली चटनी

१. भलाई के पत्ते ४ तोला २. सच्चाई की जड २ तोला ३. प्रेम के बीज ३ तोला ४. परोपकार के फल ५ तोला ५. तपस्या की छाल १५ तोला।

ये सब पांच वस्तुओ को लेकर भक्ति के पत्थर पर श्रद्धा की लोढी से खूब पीसे और फिर आत्म-विश्वास के डिब्बे मे भर लेवे और सत्सग के चमचे से २-३ रत्ती प्रतिदिन विश्वास के साथ खावे (सेवन करे) तो निश्चय मोक्ष पावे। परहेज—(चिता की दाल, देश द्रोह का नमक व्यभिचार की खटाई और विकल्प की मिरचो का त्याग होना चाहिए)।

व्यवहार मोक्षमार्ग

व्यवहार मोक्ष मार्ग भी निश्चय मोक्षमार्ग पहुँचने का साधन है इसलिए व्यवहार मोक्षमार्ग प्रत्येक व्यक्ति को पालना चाहिए।

१ देवपूजा—श्री १००८ अरहत भगवान की पूजा-अभिषेक करना।

२. भगवान का प्रवचन गणधर देव ने आगम मे ग्यारह अग और चौदह पूर्व मे बताया है उन शास्त्रो का स्वाध्याय करना चाहिए।

३ जिन-धर्म प्रत्येक व्यक्ति को पालना चाहिए। क्योकि भगवान ने शुरु मे धर्माचरण किया था उससे वह भगवान बने और मोक्ष प्राप्त किया।

४ परमपूज्य गुरुओ का प्रवचन सुनना और उनकी सेवा-भक्ति करनी चाहिए क्योकि मुनि ही इस समय सच्चा मोक्षमार्ग बता रहे हैं।

५ जो व्यक्ति देव, शास्त्र, गुरु और धर्म को नही मानता अथवा एक या दो या तीन को मानता और सच्चे मुनियो को दोषी बनाकर उनका आदर-सत्कार, पूजन नही करता उसे मिथ्यात्वी समझना चाहिए।

—वृषभसागर

भगवान महावीर से प्रार्थना

अर्हत्पुराण पुरुषोत्तम पावनानि ।
वस्तुन्यनून मखिलान्यममेक एव ।
अस्मिन् ज्वलद्विमल केवल बोधवह्नौ ।
पुण्य समग्र महमेकमना जुहोमि ।

हे भगवान मेरी यह प्रार्थना स्वीकार कीजिये क्या ?

बहुत सुख भोगे जगत के अब न इच्छा भोग की ।
इन माहि रचक सुख नही है थिति बढावे रोग की ॥
मम मोक्ष फल की चाह निश्चय अब भयो लख आपको ।
मैं हाथ जोडू शिर नवाऊँ हरो मेरे पाप को ॥

बालाश्रम दरियागज, —मुनि वृषभसागर
दिल्ली

है? आत्मा का कल्याण करनेवाली जिनवाणी सरस्वती श्रुति-देवी है। ब्रह्म महासागर के समान है। इसलिए जिन धर्म धारण करने वाले जीव का कल्याण अवश्यम्भावी है। इनमें से एक अक्षर 'ॐ' को ही जो धारण करता है उसी जीव का कल्याण होता है।

'सम्मेद चोटी' पर कलह करनेवाले दो कपि उसी के स्मरण से स्वर्ग पहुच गये। सुदर्शन सेठ के उपदेश से बैल स्वर्ग को गया। सप्त व्यसनधारी अंजन चोर को भी मोक्ष प्राप्त हुआ। इसके अतिरिक्त नीच योनि के कुत्ते को भी जीवन्धर कुमार के उपदेशसे सद्गति प्राप्त हुई। इतना महत्वपूर्ण होने पर भी लोग जैनधर्म को स्वीकार नही करते। अनादिकाल से जीव और पुद्गल दोनो ही भिन्न है यह समस्त ससार जानता है, लेकिन विश्वास नही करता। पुद्गल को जीव और जीवको पुद्गल मानते है। दोनो के गुण धर्म भिन्न है, क्या जीव पुद्गल है? या पुद्गल जीव है? पुद्गल तो जड है। स्पर्श, रस, वर्ण, गध यह उसके गुण है। ज्ञान, दर्शन-चेतना यह जीव के लक्षण है। हम तो जीव है। पुद्गल का पक्ष लिया तो जीव का नाश होता है। किन्तु मोक्ष को जानेवाला एक मात्र जीव है, पुद्गल नही। जीव का कल्याण करना, अनन्त सुख को पहुचाना अपना कर्तव्य है। लेकिन मोहमय कर्मो मे विश्व भूला हुआ है। दर्शन मोहनीय कर्म सम्यक्त्व का नाश करता है। चारित्र मोहनीय कर्म चारित्रका नाश करता है, फिर हमे क्या करना चाहिए? दर्शन मोहनीय कर्म को नष्ट करने के लिए सम्यक्त्व धारण करना चाहिए। चारित्र मोहनीय कर्मको नष्ट करने के लिए सयम धारण कीजिये। यही मेरा आदेश है। उपदेश है। ॐ सिद्धाय नम

कर्म निर्जरा का साधन आत्म-चिंतन

अनंतकाल से जीव मिथ्या-कर्म से संसार में परिभ्रमण कर रहा है। तब मिथ्या-कर्म को नष्ट करना चाहिए। तब, सम्यक्त्व क्या है? इसका समग्र वर्णन कुन्दकुन्दाचार्यजी ने समयसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय, अष्टपाहुड और गोम्मटसारादि ग्रंथों में किया है। लेकिन उसपर किसकी श्रद्धा है? तब अपना आत्म-कल्याण करलेने वाला जीव श्रद्धा से सुख किसमें होगा इसका अनुभव लेता है। ऐसे ही संसार में अनादि काल से जीव परिभ्रमण करता आया है, फिर हम क्या करना चाहिए?

दर्शनमोहनीय कर्म को नष्ट करना चाहिए। दर्शनमोहनीय कर्म आत्म-चिंतन से नष्ट होता है। कर्म की निर्जरा आत्म-चिंतन से ही होती है। दान-पूजा करने से पुण्य प्राप्त होता है। तीर्थयात्रा करनेसे पुण्य प्राप्त होता है, हरएक वर्न का उद्देश्य पुण्य प्राप्त करना है। किंतु केवलज्ञान होने के लिए, अनंत कर्म की निर्जरा के लिए आत्म-चिंतन ही उपाय है। यह आत्म-चिंतन चौबीस घंटे में से छह घड़ी उत्कृष्ट, चार घड़ी मध्यम दो घड़ी जघन्य, कम-से-कम दस-पन्द्रह मिनट या इससे कहने से पांच मिनट आत्म-चिंतन कीजिये। आत्म-चिंतन के सिवाय सम्यक्त्व नहीं प्राप्त होगा, संसार का बंधन नहीं छूटता, जन्म, बुढ़ापा, मृत्यु नहीं छूटेगी। सम्यक्त्व के सिवाय दर्शन मोहनीय कर्म का क्षय नहीं होगा। सम्यक्त्व न होने से असंख्यात सागर तक यह जीव रहेगा। [illegible]

[illegible]

होता। इसलिए कैसे भी हो, हरएक जीव को संयम धारण करना चाहिए डरना नही है, वस्त्र मे संयम नही है। वस्त्र मे सातवा गुण स्थान नही है। सातवे गुण स्थान के अभाव से आत्मानुभव नही हो सकता। आत्मानुभव के अभाव से कर्म-निर्जरा नही। कर्म निर्जरा के अभाव से केवलज्ञान नही व केवलज्ञान के अभाव से मोक्ष नही। इसलिए घबडाना नही।
ॐ सिद्धाय नमः।

सम्यक्त्व और संयम धारण के बिना समाधि संभव नहीं

सविकल्प समाधि, निर्विकल्प समाधि ऐसे दो भेद है। सविकल्प समाधि वस्त्र से गृहस्थ को होती है, वस्त्र मे निर्विकल्प समाधि नही है। भाइयो, इसलिए डरना नही। मुनिपद धारण कीजिये निर्विकल्प समाधि होने के बाद वास्तविक सम्यक्त्व होता है—आत्मानुभव के अतिरिक्त सम्यक्त्व नही। व्यवहार सम्यक्त्व आवश्यक है ऐसा कुन्दकुन्द स्वामीजी ने समयसार मे बतलाया है। निर्विकल्प समाधि मुनिपद धारण करने के बाद ही होती है। सातवे गुणस्थान से बारहवे तक पूरी होती है, तेरहवे गुणस्थान मे केवल ज्ञान होता है। ऐसा नियम है शास्त्रो मे लिखा है इसलिए संयम धारण कीजिये। पुद्गल और जीव भिन्न है। यह सर्व श्रुत है। सत्य को नही समझा। अगर सत्य समझते तो भाई बन्धु माता-पिता आदि की भावना उनमे न रहती। यह सब पुद्गल से संबंधित है। जीव का कोई भी साथी नही है। जीव बिल्कुल अकेला है। जीव अकेला ही परिभ्रमण करता रहता है। मोक्ष की प्राप्ति भी अकेले को ही होती है।

देव पूजा, गुरूउपासना, स्वाध्याय, संयम, तप और दान यह छः क्रियाए है। असि, मसि, कृषि, शिल्प, वाणिज्य और

विद्या इन छः क्रियाओ से होनेवाले पाप का इन छ क्रियाओं से क्षय होता है,-इन्ही से इन्द्रिय-सुख मिलता है। पुण्य प्राप्त होता है। पंच पाप का त्याग करने से पन्चेन्द्रिय सुख मिलता है लेकिन मोक्ष नही मिलता। सन्तति, वैभव, राज्यपद, इन्द्र पद पुण्य से ही प्राप्त होता है। किन्तु मोक्ष आत्म-चितन से ही प्राप्त होता है। नय, शास्त्र, अनुभव इन तीनो को मिला कर देखिये, मोक्ष किससे प्राप्त होता है, मोक्ष आत्म-चितन से ही प्राप्त होता है। यह भगवान की वाणी है। यही एक सत्य-वाणी है इस वाणी का एक ही शब्द सुनने से जीव 'मोक्ष पद' पाता है। कौन-सी वाणी ? 'आत्म-चितन' इसके अतिरिक्त कुछ करने से मोक्ष प्राप्त नही होता। मोक्ष प्राप्त करने के लिए आत्म-चितन ही आवश्यक है, यह कार्य करना ही चाहिए।

साराश यह है कि धर्म का मूल दया है, जिन धर्म का मूल सत्य, अहिसा है, किन्तु सत्य और अहिसा हम सब मुख से कहते है. लेकिन पालन नही करते। क्या स्वय पाक और भोजन कहने से हो पेट भर जाता है ? क्रिया करने के सिवाय बिना खाना खाये पेट नही भरता। क्रिया आवश्यक है इसके अतिरिक्त सब छोड दीजिये।

सत्य-अहिसा का पालन कोजिये। सत्य मे सम्यक्त्य होता है और अहिसा से सब जीवो का रक्षण होता है, इस लिये सत्य अहिसा का व्यवहार कीजिये। इसी व्यवहार का पालन कीजिये। इसीसे कल्याण होता है। ॐ **सिद्धाय नमः**

ध्यान का स्वरूप

वैराग्यं तत्व विज्ञानं. नैर्ग्रंथ्यं समभावना ।
जयः परीषहाणं च, पचैते ध्यानहेतवः ।।

अर्थ—वैराग्य भाव, तत्वो का ज्ञान, निर्ग्रन्थ अवस्था, साम्य भावना तथा परीषहो के कष्टो पर विजय प्राप्त करना ये पाच ध्यान के कारण हैं ।

धर्म-ध्यान के प्रकार व स्वरूप

पदस्थ मत्र वाक्यस्थं पिण्डस्थस्वात्म चितनम्
रूपस्थं सर्व चिद्रूप रूपातीतं निरजनम् ।।

१ मत्र वाक्य मे स्थित पदस्थ धर्म ध्यान है । २ स्वात्म चिन्तन पिण्डस्थ ध्यान है । ३ सर्व चिद्रूप का विचार, स्वरूप ध्यान हे । ४ रूपातीत निरजन का ध्यान रूपातीत धर्म ध्यान है।

प्रथम उस परम ब्रह्म परमात्मा का मन वचन काय से एकाग्र होकर ध्यान करना चाहिए । जिशके ध्यान के निमित्त से आ3म शक्ति प्रकट होती है ।

अरहन्त भगवान के स्वरूप मे तन्मय होकर उनका ध्यान करें । किसी तीर्थंकर को ऋषभ, पार्श्व, नेमि, महावीर को या श्री सीमधर स्वामी को नीचे प्रमाण ध्यावे ।

१—समवशरण के श्री मडप मे १२ सभाए है । उनमें चार प्रकार के देव, देविया, मुनि, आर्यिका, मानव व पशु सब बैठे है । तीन कटनी पर गन्धकुटी है । उसमे अन्तरिक्ष चार अगुल ऊ चे श्री अर्हन्त प्रभु पद्मासन मे विराजमान हैं ।

२—जिनका परमौदारिक शरीर कोटि सूर्य की ज्योति को मन्द करनेवाला है । जिसमे मासादि सात धातुए नहीं

है परम शुद्ध रत्न व्रत चमक रहा है।

३—प्रभु परम शात स्वच्छ मग्न विराजमान है, इनके सर्व शरीर मे वीतरागता झलक रही है।

४—श्री अरहन्त भगवान के क्षुधा तृषा, रोग शोक, चिता, राग, द्वेष, जन्म, मरण आदि अठारह दोष नही है।

५—जिनके ज्ञानावरणी कर्म के क्षय से अनतज्ञान प्रगट हो गया है। जिससे सर्व लोक अलोक को एक समय मे जान रहे है। दर्शनावरणी कर्म के क्षय से अनत दर्शन प्रगट हो गया है, जिससे लोकालोक को एक समय मे देख रहे है। मोहनीय कर्म के क्षय से क्षायिक सम्यग्दर्शन व यथाख्यात चारित्र या वीतरागत्व प्रगट हो रहा है। अन्तराय कर्म के क्षय से अनन्त वीर्य, अनत दान, अनन्त लाभ, अनत भोग, अनत उपभोग प्रगट हो रहे है अर्थात् नव केवल लब्धियो से विभूपित है। अनन्त लाभ शक्ति प्रगट होने से प्रभु के परमौदारिक शरीर को पुष्ट करनेवाली आहारक वर्गणाए स्वय शरीर मे मिलती रहती है। जिससे साधारण मानवो की तरह उनको ग्रास लेकर भोजन करने की जरुरत नही पडती।

६—जिन प्रभु के आठ प्रातिहार्य शोभायमान है १. अति मनोहर रत्नमय सिहासन पर अन्तरिक्ष विराजमान है। २ करोडो चद्रमा की ज्योति का मन्द करनेवाला उनके शरीर की प्रभा का मडल उनके चारो तरफ प्रकाशमान हो रहा है। ३ चद्रमा के समान तीन छत्र ऊपर शोभित होते हुए प्रभु तीन लोक के स्वामी है, ऐसा झलका रहे है। ४ हस के समान अति श्वेत चामरो को दोनो ओर देवगण ढोर रहे है। ५. देवो के द्वारा कल्पवृक्षो के मनोहर पुष्पो की वर्षा हो रही है। ६ परम रमणीक अशोक वृक्ष शोभायमान है। उनके नीचे प्रभु का सिहासन है। ७ दुदभि बाजो की

परम मिष्ट व गभीर ध्वनि हो रही है। (८) भगवान की दिव्य ध्वनि मेघ-गर्जना के समान हो रही है। भगवान निश्चय सम्यक दर्शन, निश्चय सम्यक ज्ञान व निश्चय सम्यक चारित्र रूप होते हुए परम अद्वैत आत्म स्वभाव मे तल्लीन उनको इन नामो से स्मरण करे।

कामनाशक, अजन्मा, अव्यक्त, अतीन्द्रिय, जगत वद्य योगिगम्य, ज्ञानेश्वर ज्योतिर्मय, अनाद्यनत, सर्वरक्षक, योगीश्वर जगदगुरु, अनत, अच्युत, शात, तेजस्वी, सन्मति, सुगत सिद्ध जगत श्रेष्ठ, पितामह, महावीर, मुनिश्रेष्ठ, पवित्र, परमाक्षर सर्वज्ञ, परमदाता सर्वहितैपी, वर्धमान, निरामय, नित्य अव्यय, परिपूर्ण, पुरातन, स्वयम्भू, हितोपदेशी, वीतराग, निरजन, निर्मल, परम गम्भीर, परमेश्वर, परमतृप्त, परमामृत पानकर्ता अव्याबाध, निष्कलक निजानदी निराकुल निष्पृह, देवाधिदेव, महाशकर परब्रह्म परमात्मा, पुरुषोत्तम, परमबुद्ध, अमर, अशरण-शरण, गुण समुद्र, शिवनारी समोहि सकल तत्वज्ञानी, आत्मज्ञ, शुक्लध्यानी परम सम्यकदृष्टि तीर्थकर, अनुपम, अनत लोकावलोकन शक्तिधारी, परम पुरुषार्थी, कर्म पर्वत चूरक वज्र, विश्वज्ञाता, निराकरण, स्वरूपाशक्त, सकलागम, उपदेश कर्ता, परम कृतकृत्य, परम सयमी, परम आप्त स्नातक निर्ग्रन्थ, परम निर्जरारूढ, परम सवर पति, आश्रव निवारिक, शुद्ध जीव, गणधर नायक, मुनिगण श्रेष्ठ, तत्व वेत्ता, आत्मरमी, मुक्ति नारि भर्ता, परम वैरागी-परमानदी, परम तपस्वी, परम क्षमावान, परम सत्य धर्मारूढ, परम शुचि, परम त्यागी, अद्भुत ब्रह्मचारी, शुद्धोपयोगी, निरालम्ब, परम स्वतत्र निर्वैर, निर्विकार, आत्मदर्शी, महाऋषि, इत्यादि। कहा तक कहे भगवान के अनत नाम हैं।

श्री जिनेन्द्र भगवान की प्रतिमा से ध्यान की सिद्धि

सत्यार्थदर्शन नामक ग्रंथ मे परमपूज्य १०८ आ० कुन्थु-सागर जी महाराज लिखते है—

निर्दोषमीश्वरं भक्त्या, स्मरन्तोऽपि ह्यकामतः ।
भवन्तु सुखिनः, सुज्ञा , स्वकर्त्तव्य परायणा ॥३५॥

अर्थ—इस प्रकार सर्व दूषणो से रहित ईश्वर की भक्ति और निष्काम भाव से याद करते हुए बुद्धिमान जन अपने-अपने कर्तव्य मे तत्पर व सुखी बने ।

निर्द्वन्द्वो निस्पृहः शांतो, भगवांस्तु निरजन ।
कस्याप्यतः पदार्थस्य कर्ता हर्ता भवेन्नसः ॥३६

अर्थ—वह भगवान निर्द्वंद, निस्पृह, शात और निरजन है इसलिए किसी भी पदार्थ का बनाने और बिगाडने वाला नही है और वह ईश्वर किसीको सुख-दुख नही देता है ।

ईश्वर की मूर्ति स्थापना के हेतु

पूर्वोक्तचिह्न युक्तस्य, भगवतः प्रमाणतः ।
निर्विकारा च तन्मूर्तिः बोधार्थं च प्रमोहिनाम् ॥३७
स्थाप्यते शांतिदा कैः तत्कृतीनां स्मृति हेतवे ।
तदाकृति च तद्धर्मस्थापनार्थं सदाहृदि ॥३८

तनमूर्ति ध्यानतो भक्त्या वा मूर्ति मतवन्स्वयम्
भवितुमिच्छया भव्यै क्रियते भक्ति वन्दना ॥३९
अयमेव सदुद्देशः स्तन्मूर्ति स्थापनस्य कौ ॥४०

अर्थ—निरजन निर्विकार भगवान की निर्विकार मूर्ति स्थापना से राग, द्वेष, मोह मे दुखी ससारी जीवो को शाति और आराम मिलता है, उस परम कृपालु के कार्यो की याद आती है, सदा हृदय मे उस प्रभु के आकार (छवि) और गुणो को मूर्ति के सहारे से धारण किया जाता है और उसके ध्यान से खुद को तादृश (उसके समान) वनाने की इच्छा से ही मूर्ति की भक्ति और वन्दना की जाती है, यही मूर्ति स्थापना का समीचीन ध्येय है। उसके द्वारा उस मूर्तिमत देव के अनुपम और श्रेष्ठ गुणो को अपने जीवन म उतार कर ससार के समक्ष अनुकरणीय आदर्श उपस्थित करे।

भगवान के दर्शन करने का उद्देश्य

जन्म कल्याणक के समय या राज्याभिषेक का अभिषेक करते समय निम्न प्रकार भावना भानी चाहिए।

हे प्रभो! पूर्वजन्म मे आपने विश्व सेवा करने की भावना को अपनाया था और जगत के हितार्थ समस्त वैभव को छोड कर अपना तन-मन धन सर्वस्व अर्पण किया था। इसलिए आज आप जगत्पूज्य पद को प्राप्त हो गये है।

तीन भुवन के समस्त नागेन्द्र इन्द्र, चक्रवर्ति आदि महान् पुरुष आपके चरण कमलो की सेवा मे तल्लीन होकर मधुकर के भाव को प्राप्त हो रहे है। नम्रीभूत हो रहे है। सुरेन्द्रादिक आपकी भक्ति कर अपने को कृत कृत्य मानते है। भूचर खेचर समस्त माण्डलिक राजा गण आपकी सेवा कर

अपने नर जन्म को सफल मानते है। और अलौकिक राजसी वैभव को प्राप्त करते है। यह सब आपके सातिशय पुण्य को प्रगट करता है। यहा तक कि आपके अवतरण होने के समय नरक समान अशुभ क्षेत्र मे भी जहा निरतर मारण, काटण, छेदन के सिवाय और कुछ सुनने-देखने का भी नही मिलता है, क्षण भर के लिये शाति का साम्राज्य छा जाता है। आपके वचनातीत पुण्य से प्रभावित होकर सौधर्मेन्द्र और शची नामा इन्द्राणी आपकी भक्ति और सेवा मे इतने तन्मय हो जाते है कि वे एक भवतारी बनकर अनादि कालीन ससार का अत कर देते है। वे प्रत्येक कार्य को सिर्फ शब्द के द्वारा न कहकर ससार के सामने अपनी निर्मल और पवित्र कृति का आदर्श रखते है। प्रत्येक प्राणी के जीवन का यही प्राथमिक ध्येय होना चाहिये। अगर वह अपनी आत्मा को पतन से बचाकर उन्नत और विकास मय बनाना चाहता है तो निरतर इसका उद्योग करते रहने से यह काय अति सुलभ साध्य बन सकता है।

भगवान राज्यावस्था मे होवे तो निम्न भाति विचार करना चाहिए। हे प्रभो! पूर्व भव मे आपने हृदय का ज्ञान रूपी जल से सिचन करके समस्त लोक मे विश्व उद्धार के पवित्र पावन इस अहिसामय जैनधर्म की भावना को प्रत्येक मानव की नस-नस मे कूटकूट कर भरने का घोराति घोर प्रयत्न किया था और भू-मडल पर समस्त भू-पतियो को किस प्रकार इस अहिसा सिद्धात का अनुयायी जानकर उसमे नियोजित करू और प्राण रक्षा करना है लक्षण जिसका ऐसा समीचीन धर्म का प्रचार किस प्रकार करू और इस ससार से अन्याय और

अत्याचार का नाम निशान मिटा दू । ऐसी उत्तम और शुभ भावनाओ को अपनाने से पुण्यानुवधी पुण्य को उत्पन्न कर आपने तीर्थकर पद को प्राप्त किया है जिसका वर्णन इन्द्र का गुरु वृहस्पति भी करने मे असमर्थ है तो औरो की क्या वात । उस पुण्य से खिचे हुए वत्तीस हजार मुकुट वद्ध राजा आपके चरणो मे लोटते है । आपकी आज्ञा की प्रतीक्षा करते है । आपके अनुग्रह की भीख मागते है । आपकी सेवा करने मे अपने नर जन्म की पूर्णता समझते है और अनेकानेक अनुपम रत्न आपको समर्पित करते है । यह सव पूर्वोपार्जित पुण्य का फल है । ऐसा जानकर प्रत्येक आत्मार्थी को अपनी विचार धारा भी इस प्रकार रखना चाहिए । और कार्य रूप मे परिणमन कर अपने जीवन मे उतारना चाहिये ।

दीक्षा, ज्ञान और मोक्ष कल्याणक के सबध मे दर्शन करते समय मनन योग्य विषय

(१) हे प्रभो आप पॉव पर पॉव धर के क्यो विराजमान हैं ? पाव पर पाव धरने का आपका आशय यही होना चाहिये कि ससार मे अर्थात् तीन लोक और तीन भुवन मे चलने फिरने योग्य सव स्थानो मे चल फिर चुके । लोकाकाश मे एक भी प्रदेश ऐसा नही वचा कि जिम पर चलना फिरना नही हुआ हो । तात्पर्य यह है कि इम कार्य से पूर्ण निवृत्त हो चुके है । इसलिए पाव पर पाव धर विराजमान हो । व्यवहार मे भी यह प्रचलित रिवाज हे कि मा, वहन, वेटी जव घरका सव काम कर चुकती है तो पॉव पर पाव धर कर वैठ जाया करती है ।

(२)हे प्रभो, आप हाथ पर हाथ रखकर क्यो विराजमान है ? हस्त पर हस्त आरोपित करने का आपका अभिप्राय यही मालूम पडता है कि करने योग्य सर्व कार्यो से आप फुरसत पा चुके है। आपके लिए कोई भी कार्य करना बाकी न रहा। आप पूर्ण कृत कृत्य हो चुके है।

(३) हे प्रभो ! आप आख बद कर नासाग्र दृष्टिकर क्यो विराजमान हो ? आख बद करने का आपका ध्येय यही होना चाहिये कि देखने योग्य सर्व पदार्थ आप देख चुके हैं। संसार मे कोई पदार्थ ऐसा न रहा जो आपके ज्ञान चक्षु के गोचर नही हो रहा हो। सब आशाए भी आपकी पूर्ण हो चुकी है। इसलिए आप सौम्य दृष्टि को धारण किये हुए विराजे है। देखा जाता है कि आशा रूपी पिशाचनी से ग्रसित प्राणियो के नेत्र अवश्य चलायमान होते रहते है परतु इससे आप बिलकुल रहित हे।

(४) हे प्रभो, आपने अस्त्र, शस्त्र, वस्त्र आभूपण, अलकार आदि सर्व का परित्याग क्यो कर दिया है ?

आपका कोई शत्रु नही और आप अत्यन्त निडर अपने आत्म स्वरूप मे अचल स्थित और अडिग हो इसलिए आप को शस्त्रास्त्र की आवश्यकता नही रही।

वस्त्र-आभूपण, अलकार, स्नान, गध लेपन आदि सब भोगोपभोग सामग्री है। ससार मे कोई भी पदार्थ ऐसा नही रहा जो आपके भोगने मे न आया हो। आप तो अपने शाश्वत आत्म जनित स्वराज्य को भोगने मे मग्न है, इन क्षणिक भोगोपभोग पदार्थो मे आपको क्या प्रयोजन है ? जब आप बाल्यावस्था या बाल लाला अवस्था मे थार राज्या

वस्था मे ये तव आप इतना अनुभव कर चुके है और तव भले ही ये आपके लिये कार्यकारी और उपयोगी सिद्ध हुए हो, परन्तु अव निरजन निर्विकार कृत कृत्य अवस्था मे ये आपके लिये विलकुल अनावश्यक है। ये सव मोही जीवो के लिये उपयोगी हो सकते है, जैसे ये आपके वाल्यावस्था और गृहस्थावस्था मे थे। इसलिये इन सव को आपने छोड दिया है।

नोट —भगवान की मूर्ति मे जन्मावस्था या राज्यावस्था का आरोपण करके जो पूजा, अभिषेक, स्तुति, स्तोत्र आदि करते है। उनको सातिशय पुण्यवध तो होता है परन्तु निरजन, निर्विकार, निराकार अवस्था का ध्येय रखना आवश्यक है और तद्वत् प्रतिमा वन्दनीक है, उसके विना सव निष्प्रयोजन है। यह उपदेश प्राणीमात्र के लिए है। वह वीतराग अवस्था सन्यास अवस्था पच कल्याणक पूर्वक मत्र सस्कार की गई प्रतिमा ही परम पूज्य मानी गई है। उसी से इष्ट सिद्धि हो सकती है, तीन लोक मे अकृत्रिम चैत्यालयो मे पाँच सौ धनुष और पद्मासन सहित सम्पूर्ण प्रतिविम्ब, नौ अरव, पच्चीस करोड, त्रेपन लाख, सत्ताईस हजार, नौ सौ अडतालीस है। उनकी पूजा, अभिषेक इन्द्रादिक सदैव करते रहते है। मनुष्य की सज्जाति, सुसस्कारित होते हुये पूजा अभिषेक भक्ति कर सातिशय पुण्य प्राप्त करते है। अतएव ये ध्यान सवो को करना चाहिए।

भगवान जिनेन्द्रदेव ने नौ देवता परम पूज्य वतलाये है। अरहत, सिद्ध, आचार्य उपाध्याय, साधु इनको प्रतिमाए, व इन्ही के चैत्यालय, जिनेन्द्र वाणी, जैनधर्म इनको भक्ति पूजा के द्वारा मोक्ष मार्ग चलता है—वहुत से भाई कहते है कि

पच परमेष्ठियो का तो अभिषेक होता नही फिर ये अभिषेक क्यो किया जाय, उन्हे जानना चाहिये, अभिषेक प्रतिमाओ का ही होता है। देव लोग नित्य ही अभिषेक पूजन करते रहते है। हम लोग भी अभिषेक पूजन कर महान् पुण्य उपार्जन करते है। प्रत्येक सदगृहस्थ का परम कर्त्तव्य है नित्य ही देव पूजा, गुरु सेवा, स्वाध्याय, सयम, तप और दान करता रहे, जिससे अपने सद्‌गृहस्थपने का लाभ मिलता रहे।

आत्म-ध्यान से मुक्ति की सिद्धि

जो सज्जन परमात्मा का ध्यान करते है वे इस लोक मे स्वर्गादिक सुखो को भोगकर क्रमश. कर्मो का ध्वस करते हैं। एव मुक्तिश्री को पाते है।

दूर नही है, वह परमात्मा सब के शरीर रूपी मकान मे विद्यमान है। उसे पाकर मुक्ति प्राप्त करने के मार्ग को नही जानकर लोग ससार मे भ्रमण कर रहे है।

जिस देह को उसने धारण किया है उस देह मे वह सर्वांग मे भरा हुआ है। वह सुज्ञान, सुदर्शन, सुख व शक्ति स्वरूप से युक्त है। स्वत निराकार होने पर भी साकार शरीर मे प्रविष्ट है। उसका क्या वर्णन करे। वह आत्मा ब्राह्मण नही है, क्षत्रीय नही है, वैश्य नही है, शूद्र भी नही है। ब्राह्मणादिक सज्ञा से आत्मा को इस शरीर को अपेक्षा से सकेत करते है। वह आत्मा योगी नही है। गृहस्थ भी नही है। योगी, जोगी, श्रमण, सन्यासी इत्यादि सभी सज्ञाये कर्मो की अपेक्षा से है।

वह आत्मा स्त्री नहीं है। स्त्री की अपेक्षा करने वाला भी नहीं है, पुरुष व नपुंसक भी नहीं है। मीमांसक, सांख्य नैयायिक, आर्हत इत्यादि स्वरूप में भी वह नहीं है। यह सब मायाचार के खेल हैं। वह शुद्ध है, बुद्ध है नित्य है, शुद्ध भाव में सहज मोक्ष है सिद्ध है, जिन है शङ्कर है, निरञ्जन सिद्ध है, अन्य कोई नहीं है।

वह ज्योति स्वरूप है, ज्ञान स्वरूप है, वीतराग है निरामय है, जन्म जरा मृत्यु से रहित है, कर्म संघात में रहने पर भी निर्मल है। यह आत्मा दर्शन व ज्ञान के गोचर नहीं है। शरीर से मिश्रित न होकर इस शरीर में वह रहता है। स्वसंवेदनानुभव से वह गम्य है। उसकी महिमा विचित्र है। विवेकीजन स्वत के ज्ञान से स्वतः को जो जानना है उसे स्वसंवेदन कहते हैं। जब यह मोक्ष के लिये समीप पहुंच जाता है तब अपने आप वह स्वसंवेदन ज्ञान प्राप्त होता है। इस परमात्मा को स्वयं अनुभव कर सकते हैं। परन्तु दूसरों को बोलकर बता नहीं सकते। सुननेवालों को ये सब बातें आश्चर्यजनक है। परन्तु ध्यान का अनुभव करनेवालों को बिल्कुल सत्य मालूम होती है।

आत्मा में विकार उत्पन्न करने वाले इन्द्रियों को दबाकर, स्वास के वेग को मन्द कर मन को दाब कर, चारों तरफ देखने वाली आंखों को मींचकर, सुज्ञान नेत्र से देखने पर यह आत्मा प्रत्यक्ष होता है। वह जिस समय दिखता है, उस समय मालूम होता है कि शरीर रूपी घड़े में दूध भरा हुआ है, व शरीर रूपी घर में भरे हुए शीतल प्रकाश के समान मालूम होता है। दूध व प्रकाश तो इन्द्रिय गम्य है।

परन्तु यह आत्मा इन्द्रिय गम्य नही है।

लोक में जो अप्रतिम है ऐसे चिद्रूप को किस पदार्थ के साथ रखकर कैसे बराबरी कर बताया जावे, वह अनुपम है। यह आत्मा एक ही दिन मे नही दिखता है क्रम से दिखता है। एक दफे अनेक चन्द्रमा व सूर्यों के प्रकाश के समान उज्वल होकर दिखता है फिर एक दफे (चचलता आने पर) वह प्रकाश मन्द होता है स्थिरता आने पर फिर उज्जवल होता है। एक दफे सर्वांग मे वह दिखता है। फिर हृदय, मुख व गर्भ मे प्रकाशित होता है। इस प्रकार एक दफे प्रकाश दूसरी दफे मन्द प्रकाश इत्यादि रूप से दिखता है। क्रम-क्रम से वह साध्य होता है। ध्यान के समय जो प्रकाश दिखता है वह सुज्ञान है, दर्शन है, उस समय कर्म झरने लगते है तब आत्म सुख की वृद्धि होती है।

नासिका, जिव्हा, अल्प इन्द्रियो का क्या सुख है ? उस समय उसके सर्वांग से आनन्द उमड पडता है। शरीर भर वह सुख का अनुभव करता है।

वह वैभव, वह आनद इन्द्र, नागेन्द्र, नरेन्द्र, व अहमिन्द्र को भी नही होता है। उस समय बोलचाल नही है। श्वासो-च्छवास नही है। शरीर नही है, कोई कलमष नही है। इधर उधर कम्प नही है। आत्मा पुरुष रूप उज्जवल प्रकाशमय दिखता है। शरीर के थोडे हिलने पर आतमा भी थोडा हिल जाता है। जिस प्रकार जहाज के हिलने पर उसमे बैठे हुए मनुष्य भी थोडा सा हिल जाते हैं। जिस समय आत्मा समस्त क्षोभ रहित होता है उसका वर्णन कौन कर सकता है।

प्रकाश की वह पुतली है। प्रभा की वह मूर्ति है। चित्र-

कला की वह प्रतिमा है। क्राति का वह पुरुप है, चमक का वह बिम्ब है। प्रकाश का वह चित्र है, लवालव पूर्ण ज्ञानामृत का समुद्र है।

जिस प्रकार स्वच्छ दर्पण मे वाह्य पदार्थ प्रतिविम्व होते है,उसी प्रकार अनेक प्रकार के ससार सबधी मोह क्षोभ से रहित उस निर्मल आत्मा में आत्मा जब ठहर जाता है तब उसे अखिल प्रपच ही देखने मे आते है। उस समय उसे स्वय आश्चर्य होता है कि यह आत्मा इस अल्प देह मे आया कैसे? इसमे तो समस्त जगत मे पसरने योग्य प्रकाश है। फिर इसे शरीर रूपी जरा से स्थान मे किसने भरा ? सर्व आकाश प्रदेश मे व्याप्त होने पर निर्मलता व ज्ञान इसमे है। फिर इस थोडे से स्थान मे वह क्यो रुका ? आश्चर्य है। उस समय झरझर होकर कर्म समूह झरने लगते है। और चित्कला धग-धग होकर प्रज्वलित होती है। एव अगणित सुख झूम-झूम कर बढता जाता है। यह ध्यानी व्यक्ति ही जान सकता है दूसरो को दिखता नही। गर्मी की कडी धूप के बढने पर जिस प्रकार बर्फ के पहाड पिघल जाते है,उसी प्रकार आत्म सूर्य प्रकट होने पर कार्माण व तेजस शरीर पिघल जाता है। उस समय आत्मा को देखने वाला भी वही है। देखे जाने वाला भी वही है। इसे सुनकर भारी आश्चर्य होगा कि ध्यान के फल से आगे प्राप्त होनेवाली मुक्ति भी वही है। इस प्रकार वह स्व स्वरूप है। तीन शरीर के अन्दर रहने पर उस आत्मा को ससारी आत्मा कहते हैं। ध्यान के द्वारा उन तीन शरीरो का जब नाश किया जाता है। तब वह अपने आप लोकाग्र स्थान मे

जा विराजमान होता है। उसे ही मुक्ति कहते है।

यह आत्मा स्वय अपने आपको देखने लग जावे तो शरीर का नाश होता है। दूसरे कोई हजार उपायों से नाश करने के लिये प्रयत्न करे तो भी वह अशक्य है। अपने से भिन्न कर्मों को नाश कर स्वय यह आत्मा मुक्ति साम्राज्य को पाता है। उसे वहा ले जाने वाले वहा रोकन वाले और कौन है ? कोई नही है।

देखो लोक में मुक्ति प्रदान करने वाले गुरू और देव कहलाते है। गुरु और देव तो केवल मुक्ति के मार्ग को बतला सकते हैं। कर्म नाश तो स्वय ही इस आत्मा को करना पडता है। गारुडी विद्या का गुरु क्या रण भूमि में आ सकता है ? कभी नही। शत्रुओ को जीतने के लिये तो स्वय ही को प्रयत्न करना पडता है। ज्ञान की अपूर्णता जब तक रहती है तव तक वह अरहत बाहर रहता है। जब वह आत्मा अच्छी तरह जानने लगता है तब अरहत का दर्शन अपने शरीर के अन्दर होनें लगता है। इसमें छिपाने की क्या बात है ? आत्मा को ही अपना देव समझ कर जो वन्दना कर श्रद्धान करता है, वही सम्यकदृष्टी है।

आज तक अनन्त जिन सिद्ध अपनी आत्म भावना से कर्मो को नाशकर मोक्ष सिधार गये हैं। उन्होंनें अपनी कृति से जगत को ही यह शिक्षा दी है कि सब जीव उनके समान ही स्वत: कर्म नाश कर उनके पीछे मुक्ति पावे । इस बात को भव्य गण स्वीकार करते है। अभव्य इसे गप्प बाजी समझ कर विवाद करते हैं। आत्मानुभव विवेकियों को ही हो सकता है ? अविवेकियो को वह क्यो कर हो सकता है ?

तीन शरोरो के अन्दर स्थित आत्मा ससारी है। जब तीन देहो का अन्त हो जाता है तव यह आत्मा मुक्त हो जाता है। इसलिये शरीर भिन्न है, मैं भिन्न हू। इस प्रकार के ध्यान का अभ्यास करने पर शरीर नाश होकर मुक्ति की प्राप्ति होती है। तिलो के भीतर तेल है, दूध मे घी है, लकडी मे आग है, उसे घर्षण करने पर उसी लकडी को जला देती है, इसी प्रकार आत्मा ध्यानाग्नि के द्वारा आत्मा का निरीक्षण करे तो तीन शरीर जल जाते हैं कर्म और तोन देह इन दोनो का एक अर्थ है, धर्म का अर्थ निर्मल आत्मा हे। धर्म का ग्रहण करो, कर्म का परित्याग करो धर्म के ग्रहण करने पर कर्म अपने आप दूर हो जाते है, एव मोक्ष पद की प्राप्ति होती है, इस प्रकार भगवान ने वताया, वही ज्ञान सार है। वही चारित्र ˉ र है। वही सम्यक्त्व सार है, वही उत्तम तप सार है, ध्यान से बढकर कोई चीज नही।

माला प्रतिष्ठा मन्त्र

ॐ ह्रो रत्नै सुवर्णसूत्रै बीजेर्या रचिता जपमालिका सर्वजपेपु सर्वाणि वाच्छितानि प्रयच्छतु।

यानी—रत्न सुवर्ण, सूतादि की नवीन माला बनाने के पश्चात उसे भगवान का अभिषेक करते समय पीठ मे रखना चाहिए। तदनतर एक थाली मे केशर से स्वास्तिक बनाकर माला उसके ऊपर रखना चाहिये। ऊपर का प्रतिष्ठा-मत्र सात वार शुद्ध उच्चारण करके दोनो हाथो से सुगन्धित पुष्प या लवग अथवा केशर मिश्रित चावल माला पर प्रक्षेपण करे इसके बाद वह माला जप करने योग्य हो जाती है। माला पृथ्वी पर न रखकर उच्च स्थान पर रखनी चाहिए।

णमोकार मन्त्र राज की महिमा

सुनो णमोकार की महिमा मेरे भाई।
इसके जपने से सब दुख दूर नशाई ॥ टेक
यह प्राकृत रूप अनादि मन्त्र तुम जानो,
इसमे अक्षर पैंतीस इन्हे सरधानो।
डाकिन शाकिन भी भय न कर सके कोई,
इसकी महिमा को कह सकता क्या कोई।
इक चपापुर मे मूर्ख ग्वालिया जानो,
तिन सुमरा मन मे महा मन्त्र परधानो।
वह सेठ सुदर्शन हुआ लक्ष्मीपति भारी,
अरु उसही भव मे हुआ मुक्ति अधिकारी।
जब बिंध्यश्री को सर्प डसा उपवन मे,
तब सुलोचना ने दीना मन्त्र सु मन मे।
वह मन्त्र शक्ति से गगा देवी होई,
उनकी महिमा का पार न पावे कोई।
हा नाग नागिनी जले जा रहे क्षण मे,
तब देख पार्श्व प्रभु दया विचारी मनमे।
हुए पद्मावती धरणेन्द्र एक ही छिन मे।
इक वृषभ मृतक सम पडा अहो मगमे था,
अरु अन्तिम सासे हाय हाय गिनता था।
तब पद्म सेठ ने दीना मन्त्र महाना,
हुआ महावीर सुग्रीव राव परधाना।
यह मन्त्र दिया जीवन्धर ने कुत्ते को,
हा वह भी तत्क्षण मे ही था मरने को।

तव किया ध्यान वह इसका मनके अन्दर,
हो गया यज्ञो का राजा वह अति सुन्दर।
इसकी अचिन्त्य महिमा से इक तस्कर ने,
आकाश गामिनी विद्या साधी क्षण मे।
वह आण ताण न जाण कहता था,
पर सेठ वचन परमाण ही कहता था।
वह फसी हस्तनी जव भीषण दल दल मे,
तव महा मंत्र का पाठ सुनाया खग ने।
वह भव लेकर कुछ समय वाद ही भाई,
सीता वन प्रकटी परम सती जग माही।
जब रुद्रदत इक पर्वत के ऊपर जा,
मारा था इक बकरे को पापी ने हा।
तब चारुदत्त ने दीना मन्त्र महाना,
वह गया स्वर्ग मे तत्क्षण जग ने जाना।
सो चलते उठते सोते जाते आते,
अरु हँसते रोते मरते पीते खाते,
यह मन्त्र जो पढे पढावे चीते,
कहे 'शाह' वह निस्सशय लोकत्रय जीते।

णमोकार मन्त्र माहत्म्य

उपदेष्टा—मुनि श्री जयसागरजी महाराज

णमो अरहताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं,
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं ॥

प्रातः काल मत्र जपो णमोकार भाई,
अक्षर पैंतीस शुद्ध हृदय मे घराई।
नर भव तेरो सफल होत पातक टर जाई
विघन जासो दूर होत सकट मे सहाई।
कल्पवृक्ष कामधेनु चिन्तामणि पाई,
ऋद्धि सिद्धि पारस तेरो प्रगटाई।
मत्र जत्र तंत्र सब जाहि से बनाई,
सम्पति भ डार भरे अक्षय निधि पाई।
तीन लोक माहि सारे वेदन मे गाई,
जग मे प्रसिद्ध धन्य मगलीक भाई।

अर्थ—णमोकार मन्त्र यह नमस्कार मन्त्र है इसमे समस्त मल दुष्कर्मों को भस्म करने की शक्ति है। बात यह है कि णमोकार मन्त्र हृदय मे धारण करने से आत्मा मे अन्तरंग वहिरग दोनो प्रकार की अद्भुत शक्तिया उत्पन्न होती हैं, जिससे कर्म कलक भस्म हो जाता है। यही कारण है कि तीर्थंकर भगवान भी विरक्त होते हुये इसी मन्त्र का उच्चारण करते है तथा वैराग्य भाव की वृद्धि के लिये आये हुए लोकान्तिक देव भी इसी महामन्त्र का उच्चारण करते है, यह

अनादि मन्त्र है, प्रत्येक तीर्थंकर के कल्पकाल मे इसका अस्तित्व रहता है। काल दोष से मुक्त हो जाने पर अन्य लोगो को तीर्थ कर की दिव्यध्वनि द्वारा यह अवगत हो जाता हे है कि णमोकारमन्त्र समस्त द्वादशाग जिनवाणी का सार है उसमे समस्त द्वादशाग की अक्षर सख्या निहित है। जैन दर्शन के तत्व पदार्थ द्रव्य गुण पर्याय नय निक्षेप आस्त्रव वध आदि इस मन्त्र मे विद्यमान हैं। समस्त मन्त्र शास्त्रो की उत्पत्ति इसी महामन्त्र से हुई है।

अनादिमूलमत्रोय सर्व विघ्न विनाशतः।
मगलेषु च सर्वेषु प्रथमं मंगलं मतः॥

द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा से यह मगल सूत्र अनादि हैं और पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा से यह सादि है। इस प्रकार यह नित्यानित्य रूप भी है। आगम मे इस मन्त्रकी वडी भारी महिमा बतलाई गई है यह सभी प्रकारकी अभिलाषाओ को पूर्ण करनेवाला है। आत्म शोधन का हेतु है। इसका नित्य जाप करनेवाले के रोग, शोक आदि सभी बाधाए दूर हो जाती हैं।

पवित्र अपवित्र रोगी दुखी सुखी आदि किसी भी अवस्था मे इस मत्र का जप करने से समस्त पाप भस्म हो जाते है तथा वाह्य और आभ्यतर पवित्र हो जाता है। यह समस्त विघ्नो को दूर करने वाला तथा समस्त मगलो मे प्रथम मगल है। किसी भी कार्य के आदि मे इसका स्मरण करने से वह कार्य निर्विघ्नतया पूर्ण हो जाता है।

ऐसो पंच णमोयारो सव्व पावप्पणासणो ।
मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं होइ मंगल ।।

मत्र ससारसार त्रिजगदनुपम सर्वपापारिमत्र ।
ससारोच्छेद मत्र विष विषहर कर्म निर्मूलमन्त्र ।।
मत्र सिद्धिप्रधान शिवसुखजनन केवलज्ञानमत्र ।
मत्रं श्रीजैनमत्र जप जप जपित जन्मनिर्वाणमत्र ।। १
आकृष्टिं सुरसम्पदा विदधते मुक्तिश्रियो वश्यता ।
उच्चाट विपदा चतुर्गतिभुवा विद्वेषमात्मैनसाम् ।।
स्तम्भ दुर्गमन प्रति प्रयततो मोहस्य सम्मोहन ।
पायात्पचनमस्क्रियाक्षरमयी साराधना देवता ।। २
अपवित्र· पवित्रो वा सुस्थितो दुःस्थितोऽपि वा ।
ध्यायेत्पंचनमस्कार सर्व पापैः प्रमुच्यते ।। ३
अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्था गतोऽपि वा ।
य. स्मरेत्परमात्मान स वाह्याभ्यतरे शुचि . ।। ४
अपराजितमन्त्रोऽयं सर्वविघ्नविनाशनः ।
मगलेषु च सर्वेषु प्रथम मगल मतः ।। ५
विघ्नौघा प्रलय यान्ति शाकिनी भूत पन्नगाः ।
विषो निर्विषता याति स्तूयमाने जिनश्वरे ।। ६
अन्यथा शरण नास्ति त्वमेव शरण मम ।
तस्मात् कारुण्य भावेन रक्ष रक्ष जिनेश्वरः ।। ७

यह महामन्त्र ससार का सार है, जन्म-मरण रूप ससार से छूटने का सरल अवलवन सार तत्व है, तीनो लोको मे अनुपम है इस मन्त्र के समान चमत्कारी और प्रभावशाली अन्य कोई मन्त्र नही है। अतः यह तीनो लोको में अद्भुत

है, समस्त दुष्कर्मों का अरि है। इस मत्र का जाप करने से किसी भी प्रकार का पाप नष्ट हुए बिना नही रहता है। जिस प्रकार अग्नि का एक कण घास-फूस के बडे-बडे ढेरो को नष्ट कर देता है उसी प्रकार यह णमोकार मत्र समस्त कर्मों को नष्ट करने वाला होने के कारण पाप हारी है। यह मन्त्र ससार का उच्छेदक है। व्यक्ति से भाव ससार राग द्वेपादि और द्रव्य ससार ज्ञानावरणादि कर्मो का विनाशक है तीक्ष्ण विषो का नाश करने वाला है। अर्थात इस मन्त्र के प्रभाव से सभी प्रकार की विष बाधाएँ नष्ट हो जाती हैं। यह सब कर्मो का निर्मूल विनाश करने वाला है। इस मन्त्र का भाव सहित उच्चारण करने से कर्मो की निर्जरा होती है तथा इसका स्मरण करने से कर्मो का विनाश होता है। यह मत्र सभी प्रकार की सिद्धियो को देने वाला है। भाव सहित और विधि सहित इस मन्त्र का अनुष्ठान करने से सभी तरह के लौकिक और अलौकिक सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती है।

साधक जिस वस्तु की कामना करता है वह उसे प्राप्त हो जाती है। दुर्लभ और असभव कार्य भी इस महामन्त्र को आराधना से पूर्ण हो जाते है। और मन्त्र मोक्ष सुखको उत्पन्न करने वाला है। यह केवलाज्ञान मन्त्र कहलाता है। इसके जाप से केवलज्ञान की प्राप्ति होतो है। तथा यही मन्त्र निर्वाण सुख का देने वाला भी है।

यह णमोकार मन्त्र देवो की विभूति और सम्पति को आकृष्ट कर देने वाला है। मुक्ति रूपी लक्ष्मी को वश करने वाला है। चतुर्गति मे होने वाले सभी तरह के कष्ट और

विपत्तियो को दूर करने वाला है। आत्मा के समस्त पापों को भस्म करने वाला है। दुर्गति को रोकने वाला है, सम्पत्ति को जगाने वाला है, आत्म श्रद्धा को जाग्रत करने वाला है मोह का स्तभन करने वाला है, विष या और सभी प्रकार से प्राणियो की रक्षा करने वाला है।

किसी भी स्थान पर, सोते समय, जागते, चलते, फिरते, किसी भी अवस्था मे इस णमोकार मत्र का स्मरण करने से आत्मा सर्व पापो से मुक्त हो जाता है। शरीर और मन पवित्र हो जाते है। यह सप्त धातु मय शरीर सदा अपवित्र रहता है, इसकी पवित्रता णमोकार मत्र के स्मरण से उत्पन्न निर्मल आत्म परिणित द्वारा होती है। अतः निसन्देह यह आत्मा को पवित्र करने वाला है। इसका स्मरण किसी भी अवस्था में किया जा सकता है। यह णमोकार मत्र अपराजित है। अन्य किसी मत्र द्वारा इसकी शक्ति प्रतिहत है—अवरुद्ध नही की जा सकती है इसमे अद्भुत सामर्थ्य निहित हैं। समस्त विघ्नोको क्षणभर मे नष्ट करने मे समर्थ हैं। इसके द्वारा भूत, पिशाच, शाकिनी, डाकिनी, सर्प, सिह, अग्नि आदि के विघ्नो को क्षणभर मे ही दूर किया जा सकता है। जिस प्रकार हलाहल विष तत्काल अपना फल देता है और उसका फल अव्यर्थ होता है उसी प्रकार णमोकारमंत्र भी तत्काल शुभ पुण्य का आस्रव करता है तथा अशुभोदय के प्रभाव को क्षीण करता है। मत्र सम्पत्ति प्राप्त करने का एक प्रधान साधक है तथा पुण्य की वृद्धि मे सहायक होता हैं। मनुष्य जीवन भर पापास्रव करने पर भी अन्तिम समय मे इस महामत्र के स्मरण के प्रभाव से स्वर्गादि सुखो को प्राप्त कर लेता है, इसलिये महा

मत्र का महत्व बतलाते हुए कहा गया है—

कृत्वा पाप सहस्राणि हत्वा जन्तु शतानि च ।
अमु मत्रं समाराध्य तिर्यंचोपि दिवंगताः ॥ ज्ञानार्णव

अर्थात् तिर्यंच (पशु पक्षी) जो मासाहारी क्रूर है जैसे सर्प सिंहादि जीवन मे सहस्रो प्रकार के पाप करते है वे अनेक प्राणियो की हिसा करते है, मासाहारी होते हैं तथा इनमे क्रोध मान माया और लोभ कषायो की तीव्रता होती है फिर भी अतिम समय मे किसी दयालु द्वारा णमोकार मत्र का श्रवण करने मात्र से तिर्यंच पर्याय का त्यागकर स्वर्ग मे देव गति को प्राप्त होते है। इस मत्र के चिन्तन, स्मरण और मनन करने से भूत प्रेत जन्य सभी कष्ट दूर हो जाते है, राग द्वेष अशाति तथा राज भय, चोर भय, कष्ट भय, रोग भय आदि भी इस मत्र के प्रभाव से दूर हो जाते है ।

णमोकार मत्र का जाप करने के लिये सर्व प्रथम आठ प्रकार की शुद्धि की अति आवश्यकता है।

द्रव्य शुद्धि—पचेन्द्रिय तथा मन को वश कर कषाय और परिग्रह का शक्ति के अनुसार त्यागकर कोमल और दयालु चित्त हो जाप करना चाहिये। मन शुद्धि पात्र की अतरग शुद्धि है। जाप करने वाले को यथाशक्ति अपने विकारो को हटाकर ही जाप करना चाहिए। अतरग से काम क्रोध मान माया आदि विकारो को हटाने की आवश्यकता है।

क्षेत्र शुद्धि—निराकुल स्थान जहा हल्ला गुल्ला न हो, जहा डास मच्छर आदि बाधक जन्तु न हो, चित्त मे क्षोभ उत्पन्न करने वाले उपद्रव एव शीत उष्ण की बाधा न हो।

ऐसा एकात निर्जन स्थान जाप करने के लिए उत्तम है। घर के किसी एकात प्रदेश मे, जहा अन्य किसी प्रकार की बाधा न हो, पूर्ण शाति रह सके, ऐसी जगह पर जाप किया जा सकता है।

समय शुद्धि—प्रातः, मध्यान्ह और सध्या समय कम-से-कम पूर्ण लगन से इस महामत्र की जाप करना चाहिये। जाप करते समय निश्चिन्त रहना एवम् निराकुल होना परमावश्यक है।

आसन शुद्धि—काष्ट शिला भूमि चटाइया शीतलपट्टी पर पूर्व दिशा या उत्तर दिशा की ओर मुंह करके पद्मासन, खड्गासन या अर्ध पद्मासन होकर क्षेत्र तथा काल का प्रमाण करके मौन पूर्वक इस मत्र का जाप करना चाहिये।

विनय शुद्धि—जिस आसन पर बैठकर जाप करना है, उस आसन को सावधानी पूर्वक ईर्यापथ शुद्धि के साथ साफ करना चाहिये तथा जाप करने के लिए नम्रता पूर्वक भीतर का अनुराग भी रहना आवश्यक है। जब तक जाप करने के लिए भीतर का उत्साह नही होगा तब तक सच्चे मन से जाप नही किया जा सकता है।

मनः शुद्धि—विचारो की गदगी का त्याग कर, मन को एकाग्र करना, चचल मन इधर उधर भटकने न पावे, इसकी चेष्टा करना, मन को पूर्णतया पवित्र बनाने का प्रयास करना ही इस शुद्धि मे अभिप्रेत है।

वचन शुद्धि—धीरे धीरे साम्यभाव पूर्वक इस मत्र का शुद्ध जाप करना अर्थात् उच्चारण करने मे अशुद्धि न होनें पाये तथा उच्चारण मन ही मन में होना चाहिये।

काय शुद्धि—शौचादि शकाओ से यत्नाचार पूर्वक शरीर शुद्ध करके हलन चलन क्रिया से रहित होकर जाप करना चाहिये, जाप के समय शारीरिक शुद्धि का भी ध्यान रखना चाहिये। इस मत्र का जाप यदि खडे होकर करना हो तो तीन तीन श्वासोच्छास मे एक बार पढना चाहिए। एक सौ आठ बार के जाप मे कुल तीन सौ चौबीस श्वासोच्छवास (सास) लेना चाहिये। जाप करने की तीन विधिया हैं—कमल जाप हस्तागुली जाप और माला जाप।

कमल जाप की विधि —अपने हृदय मे आठ पाखुडी मे श्वेत कमल का विचार करे। उसकी प्रत्येक पाखुडी पर पीत वर्ण १२-१२ बिन्दुओ की कल्पना करे तथा मध्य के गोल वृत कर्णिका मे बारह वृतबिन्दुओ का चिंतन करे। इन १०८ बिन्दुओ मे प्रत्येक बिन्दु पर १-१ मत्र का जाप करता हुआ १०८ वार इस मत्र का जाप करे। मत्र जाप का हेतु —

प्रति दिन व्यक्ति १०८ प्रकार के पाप करता है अतः १०८ बार इस मत्र का जाप करने से पापो का नाश होता है। समरम्भ समारम्भ आरम्भ इन तीनो को मन बचन काय से गुणा किया तो (३ × ३ = ९) नौ हुआ। इस को कृत कारित अनुमोदना और चार कषायो से गुणा किया तो (९ × ३ × ४ = १०८) एकसौ आठ हुआ। बीच वाले गोल वृत्त मे १२ बिंदु हैं और आठ दलो मे से प्रत्येक पर १२,-१२ बिंदु है इन १२ × ८ = ९६ + १२ = १०८ बिंदुओ पर १०८ बार यह मत्र पढा जाता है।

हस्तांगुलि जाप—अपने हाथ की अगुलियो पर जाप करने की प्रक्रिया यह है कि मध्यमा (बीच की अगुली) के बीच के पोरुये पर इस मत्र को पढें, फिर उसी अगुली के ऊपरी पोरुये पर फिर तर्जनी—अगूठे के पास वाली अगुली के ऊपरी पोरुये पर मत्र जाप करे, फिर उसी अगुली के बीच के पोरुये पर मत्र पढे, फिर नीचे के पोरुये पर जाप करे। अनतर बीच की अगुली के निचले पोरुये पर मत्र पढे फिर अनामिका सबसे छोटी अंगुली के साथ वाली अगुली के निचले पोरुये पर फिर बीच तथा ऊपर के पोरुयो पर क्रम से जाप करे। इसी प्रकार पुनः बीच की अगुली के बीच के पोरुये से जाप प्रारम्भ करे।

इस प्रकार नौ-नौ बार मत्र जपता रहे। इस तरह १२ बार जपने से १०८ बार मे पूरा एक जाप होता है।

माला जाप—१०८ दाने की माला द्वारा जाप करे।

इन तीनो जाप की विधियो मे उत्तम कमल जाप विधि है इसमे उपयोग अधिक स्थिर रहता है तथा कर्म बन्ध को क्षीण करने के लिए अधिक सहायक है। सरल विधि माला जाप है। इसमे किसी तरह का झझट नही है—सीधे माला लेकर जाप करे। इसके पश्चात भगवान का दर्शन करना चाहिए।

ततः समुत्थाय जिनेद्रबिंब पश्येत्परं मंगलदानदक्षम्।
पापप्रणाशं परपुण्यहेतु सुरासुरैः सेवितं पादपद्मम्॥

अर्थात् प्रातः काल की जाप के पश्चात चैत्यालय मे जाकर सब तरह के मगल करने वाले, पापो का क्षय करने वाले सातिशय पुण्य के कारण एव सुरासुरो द्वारा वन्दनीय श्री जिनेन्द्र भगवान का दर्शन करना चाहिए।

ज्ञान-गुणमंजरी-शतक

(ले० मुनि श्री १०८ श्री जयसागर जी)

यह भोला जीव अपनी आत्म शक्ति को सभाले बिना ससार मे जन्म-मरण के दुख उठा रहा है। उन दुखो से छुटकारा पाने के लिये श्री गुरु हृदय मे दया धारण कर आत्म-शक्ति के उपाय बता रहे हैं। इन उपायो पर चलने से आत्मा मे शक्ति प्रगट होगी।

१ आत्म कल्याण के लिए शुद्ध भोजन पूर्वक ब्रह्मचर्य से रहकर स्वाध्याय करना अति आवश्यक है।

२ आत्म विश्वास के बिना मोक्ष-मार्ग की प्राप्ति दुर्लभ है।

३ पर पदार्थों को पर जानने के साथ उससे राग-द्वेष और मोह मत मरो।

४ जो उदय मे आया कर्म फल है, उसे ऋण के सदृश जान कर हर्ष-विषाद मत करो।

५ किसी से उपकार की इच्छा मत करो। अपनी आत्मा के भरोसे पर रहो।

६. जो कष्ट काल मे धीरता से विचलित नही होता सुख और शान्ति का अनुभव करता है।

७ ससार दुखःमय है। इसमे वही जीव सुखी हो सकता है, जो इसकी मूर्छा को छोडता है।

८ साधु-समागम सुख-शान्ति का श्रेष्ठ निमित्त कारण है।

९. गृहवास सुख-शान्ति का वाधक इसलिए है कि उसमे रहने से मूर्छा बढ जाती है ।

१० जो कोई तुम्हारा अपकार करे उसको तथा तुम किसी का उपकार करो उसको भूल जाओ ।

११ अपने गुणों अथव अवगुणो का यथार्थ चितवन करो ।

१२ राग-द्वेषादि करना निश्चय हिंसा है, और यही ससार की जननी है ,

१३ इच्छाओ का अभाव ही शान्ति का मार्ग है ।

१४ पूर्ण निराकुलता ही परमात्म पद व मोक्ष है ।

१५. यह मनुष्य जन्म महादुर्लभ है । इसे पाकर आलस्य प्रमाद और मोह मे दिन नही गँवाना चाहिए ।

१६. धर्म की सब सामग्री पाकर आत्मा का हित साधन करना चाहिए ।

१७. जो पुण्यरूपी पूँजी तो साथ मे लाया नहीं और सुखी होने के लिए रात दिन परिश्रम करता है, अधिक तृष्णा वढाता है वह अज्ञानी है ।

१८. पूर्व पुण्य के उदय से ज्ञानावरण के क्षयोपशम से ज्ञान की प्राप्ति हुई, लोभ शत्रु को दुखदायी समझा, फिर भी सतोष न रखे तो वह अज्ञानी है ।

१९. किसी सद्गुरु की कृपा से ज्ञान रत्न पाया, उससे अधीरज को बुरा समझा, अतः ससार सम्बन्धी कष्ट आ जाने पर धीरज छोड़ देवे तो वह अज्ञानी है ।

२०. ज्ञान की प्राप्ति होने से संसार को असार जान,

फिर ससार मे फँसाने वाले झूठ को बोले, माया कपट न करे, क्लेश की वृद्धि न करे वह ज्ञानी है ।

२१ आत्मा की शक्ति के अनुसार सौगन्ध व्रत (पच्चखाण) करना चाहिये, और सौगन्ध (ली हुई प्रतिज्ञा) को भ ग करे तो धिक्कारने योग्य है अज्ञानी है ।

२२. पूर्व पाप के उदय से दुख आजावे, उस समय आत्मज्ञान के वल से शान्ति धारण करना चाहिये, अगर न करे तो अज्ञानी है ।

२३. साता वेदनीय कर्म के उदय से सुख पाकर अभिमान नही करना चाहिये । अभिमान से धर्म कर्म को भूल जावे तो वह अज्ञानी है ।

२४ ज्ञान आदि गुणो को बढ़ाने का प्रयत्न करना चाहिये यदि उसके विपरीत ससार के बढाने वाले खोटे खोटे काम करे तो वह अज्ञानी है ।

२५ उत्तम ज्ञानी लोगो को सगति पाकर भी अपनी आत्मा को निर्मल न बनावे अर्थात् राग-द्वेष दूर नही करे तो वह अज्ञानी है ।

२६ ज्ञानवानो की सगति मिलने पर उनकी सेवा भक्ति करके अपने आपको उज्ज्वल, पाप रहित करना चाहिये, अगर न करे तो अज्ञानी है ।

२७ व्रत (पच्चखाण) में दृढता रखनी चाहिये, कष्ट आ जाने पर प्रतिज्ञा ली हुई को न छोडे । सकट मे धर्म को छोड दे वह अज्ञानी है ।

२८ संसारिक कामो मे तो नियमो का पालन करता है,

किन्तु धार्मिक कामों के लिये नियम को परवाह नही करता तो वह अज्ञानी है।

२९ काई उत्तम मनुष्य धर्म का उपदेश देवे तो उसका अहसान मानना चाहिये, किन्तु उल्टा उस पर क्रोध करे तो अज्ञानी है।

३०. ज्ञान सूर्य का उदय होने पर, ससार को असार समझ कर हिसा आदि पापो को ससार का वृद्धि का कारण जानकर भी जो व्यक्ति त्याग नही करता वह अज्ञानी है।

३१. थोडे से जीवन के लिये बहुत सा आरम्भ करता है कषाय करता है दूसरो को दुख देता और भय उत्पन्न करता है वह अज्ञानी है।

३२ अपनी आत्मा अनादि काल से काम, क्रोध, मान, माया, लोभ, मोह और अज्ञान के बन्धन में पडी है, उससे छूटने का उपाय करना चाहिये। इस उपाय को न करने वाला अज्ञानी है।

३३ पर की ऋद्धि-विभूति को देखकर उससे ईर्षा करने वाला व दुर्ध्यान करने वाला अज्ञानी है।

३४ दुष्ट जीव पर के औगुण देखता है, लेकिन अपने औगुण नही देखता, इसलिये दूसरे उत्तम गुण वाले महापुरुष की निन्दा करता है, वह अज्ञानी है।

३५. सुखी होने के लिए छल-कपट से परिग्रह इकट्ठा करने वाले तथा जिव्हा के स्वाद व काम भोग का सेवन करने वाले अज्ञानी है।

३६. देह का पोषण करने के लिये रसना इन्द्रिय व

काम भोग सेवन करने के लिये जीवो का घात करने वाला अज्ञानी है ।

३७ सब जीवो को अपने समान जानकर हृदय मे दया नही रखे तो वह अज्ञानी है ।

३८ सोच-विचार कर वचन बोलना चाहिये । पाप सहित हास्य और भय सहित हानिकारक और अयोग्य वचन बोलने वाला अज्ञानी है ।

३९. मनुष्य भव का एक पल भी बहुमूल्य रत्न के समान है । उसे व्यर्थ गपशप मे गवाने वाला अज्ञानी है.।

४०. ज्ञानवान होकर पाचो इन्द्रियो की इच्छाओ को और मन को वश मे रखना चाहिये, यदि ऐसा न करे तो वह अज्ञानी है ।

४१ ज्ञानी अभिमान न करे, पाप कार्य करते हुए मन मे शका और भय रखे, यदि ऐसा न करे तो वह अज्ञानी है ।

४२ बिना मतलब मन को ऊच-नीच जगह मत दौडाइये । कुरूप अथवा रूपवती पर स्त्री को देखकर चाह न करे, अगर करे तो वह अज्ञानी है ।

४३ निरोग शरीर पाकर यथाशक्ति तपस्या आदि उत्तम कार्य करना चाहिये, यदि न करे तो वह अज्ञानी है ।

४४. पूर्व जन्म मे पैदा किये हुए अशुभ कर्म को भोगते समय हृदय मे विलाप और रौद्र ध्यान न करना चाहिये, यदि करे तो वह अज्ञानी है ।

४५ मनुष्य जन्म पाकर अपनी आत्मा के स्वरूप का विचार न करे, धर्म कार्यों का चिंतवन न करे तो वह अज्ञानी है ।

४६ धर्मात्मा पुरुष को आत्मा का साधन करते हुए देखकर उसकी निंदा न करनी चाहिये, द्वेष व ईर्ष्या न करनी चाहिये। उसके अवगुण प्रकट न करना चाहिये। हसी न करना चाहिये यदि ऐसा करे तो वह अविवेकी है।

४७ श्री वीतराग अरहन्तदेव के वचन मे श्रद्धा-प्रतीति करनी चाहिए, शका काक्षा आदि उत्पन्न कर जन्म नही गवाना चाहिए। यदि इसके विपरीत करे तो वह अविवेकी है।

४८ गुणवान महापुरुषो को देखकर अति आनन्द मनाना चाहिए, उनकी सेवा भक्ति तथा गुण कीर्तन करना चाहिए। यदि ऐसा न करे तो वह अविवेकी है।

४९ ससार रूपी बन काम, क्रोध, लोभ और मोहरूपी दावानल से जल रहा है, मनुष्य इस जलते हुए ससार को शान्ति, क्षमा और निर्लोभता आदि जल से शान्त कर इसमे से सत्यभूत धर्मरूपी रत्न को निकाल लेवे तो वह ज्ञानी है और न निकाले तो वह अविवेकी है।

५० ससार रूपी वन मे अनत काल से भटकते-भटकते भारी पुण्य के उदय से सुखकारी मनुष्य जन्म रूपी विश्राम पाया, उसे पाकर क्लेश न करना चाहिए, आत्मा को फिर दुख मे न पटकना चाहिए।

५१. बीते काल मे अनतानत जन्म मरण किए, अनत दुख भोगे, इसे न भूलना चाहिए। यदि भूले तो वह अविवेकी है।

५२ मनुष्य जन्म पाकर अच्छे-अच्छे काम करना चाहिए। यथाशक्ति पर उपकार अवश्य करना चाहिए यदि उपकार न करे तो वह अविवेकी है।

५३ आयु को अंजुली के जल समान अस्थिर जानकर संसार मे लीन नही होना चाहिए, तेरा-मेरा नही करना चाहिए यदि ऐसा करे तो वह अविवेकी है।

५४ बिना घृत डाले ही तृष्णा रूपी अग्नि की ज्वाला उठती रहती है, उसमे परिग्रह रूपी घृत डालकर शीतल होने की आशा न करनी चाहिए, जो शीतल होने की आशा रखता है, वह अविवेकी है।

५५ शास्त्र मे कही गई नरक की अनंत वेदना को सुनकर और अच्छी तरह समझ कर आत्मा को समझाना चाहिए और पाप से डरना चाहिए, अगर न डरे तो वह अविवेकी है।

५६ वृद्धावस्था आजाने पर शक्ति नष्ट होजाती है, हाथ पाव शिथिल हो जाते हैं। नेत्र की शक्ति क्षीण हो जाती है। ऐसी हालत मे धन की लालसा न रखनी चाहिए। वृद्धावस्था मे जो धन की तृष्णा रूपी अग्नि से नित्य जलता रहता है वह अज्ञानी है।

५७ अज्ञानी जीव सारे दिन हाय धन, हाय धन करता हुआ धंधे मे मग्न रहता है, रात्रि प्रमाद मे बिताता है, लेकिन दो घन्टे भी समता धारण कर धर्म साधन नही करता वह अज्ञानी है क्योकि ५० हाथ की रस्सी कुए डालकर दो हाथ रस्सी भी अपने हाथ मे नही रखता है।

५८ झूठ तथा पाप का उपदेश नही देना चाहिए, आत्मा को हानि पहुचाने वाली कुविद्या लोगो को नही सिखाना चाहिए अनर्थ नही करना चाहिए क्योकि इन कार्यों से आत्मा नरक गति पाकर अनन्त दुख भोगता है।

५९. ससार में जीवो को मरते हुए प्रत्यक्ष देखकर मरने का भय रखना चाहिए। अपने को अविनाशी नही समझना चाहिए। लक्ष्मी को चचल तथा कुटुम्ब परिवार आदि को क्षणभगुर समझना चाहिए, अगर ऐसा न समझे तो वह अज्ञानी है।

६० ज्ञानी पुरुष ससार के निकम्मे काम नही करते, किन्तु अनत काल को दूर करने के लिए निज ज्ञान प्रकट करने वाले श्रेष्ठ कार्य करते हैं, लेकिन अज्ञानी लोग इससे उल्टा करते हैं।

६१. अज्ञानी लोग ससार मे निकम्मे कामो को अच्छा मसझते हैं और उसी में परिश्रम करते हैं तथा निज ज्ञान को प्रगट करने वाले श्रेष्ठ कार्यों को व्यर्थ समझते है।

६२. अज्ञानी जीव अपना नाम करने के लिए, कीर्ति विस्तार के लिए अनेक आरम्भ करते है, बडे-बडे पाप करते हुए भी भय नही खाते, लेकिन वे ऐसा नही समझते कि उसका फल हमें अनेक भवो में दुख भोगना पडेगा।

६३. पूर्व जन्म के पुण्य से लक्ष्मी प्राप्त हुई है, उन लक्ष्मी के निमित्त से अनेक कुकर्म करे वह अविवेकी है।

६४. अज्ञानी जीव शक्ति होने पर धर्म कार्य नहीं करते आत्मा का कल्याण नही करते, किन्तु जब इन्द्रियां शिथिल और बलहीन हो जाती हैं, तब धर्म पालन की इच्छा करते हैं। भला अग्नि लग जाने पर कुआं खोदना वृथा नही तो क्या है।

६५ हर एक प्राणी को क्षमा, दया, विनय नियम, शील, संतोष, धैर्य और गंभीरता आदि उत्तम गुणों को बढाने का

अभ्यास करना चाहिये ।

६६ हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, दुराचार, ईर्षा और कपट इत्यादि अनेक दुर्गुणो को छोडना चाहिये । जो नहीं छोडता वह अविवेकी है ।

६७ धर्म पर श्रद्धा रखनी चाहिए, धर्म की प्रभावना करनी चाहिए, काल का चक्र सिर पर घूम रहा है, इसलिये एक क्षण का भरोसा नही । सदैव धर्म सेवन करते रहना चाहिए, जो नही करते वे अविवेकी हैं ।

६८ अज्ञानी लोगो को ठगने के लिए तथा प्रश्न करने के लिए धर्म का नाम रखकर उपदेश देने वाला व्यक्ति ख्याति, लाभ और पूजा का इच्छुक अविवेकी है ।

६९ अपने को और दूसरो को सुखी बनाने का प्रयत्न करना चाहिये । जो मनुष्य अपने को सुखी और दूसरो को दुखी देखकर खुश होता है, दुखी जीवो की हसी करता है, दुर्बल अपग तथा दरिद्र को देखकर करुणा नही करता वह अविवेकी है ।

७० ज्ञान पाने का सार अपनी आत्मा का कल्याण करना, दूसरे जीवो को उपदेश देना, ज्ञान के साधन—पुस्तक, कलम, दवात आदि देना, ज्ञान दान देना तथा दिलाना आदि है । लेकिन जो ज्ञान-शक्ति होने पर भी परोपकार नही करता, वह अज्ञानी है ।

७१. धर्म ध्यान, व्रत, नियम, पच्चखाण, दान और तपस्यादि धर्म कार्य करते किसी को नही रोकना चाहिये जो रोकता है, वह अविवेकी है, और तीव्र अन्तराय का बन्ध करता है ।

७२ कुव्यसनी, हिंसक, झूठा, गंवार, कायर, चोर, अन्यायी, चुगलखोर, ईर्षा भाव वाला, क्रोधी, मानी, मायावी, लोभी और धैर्य रहित आदि दुर्जनो की सगति नही करना चाहिये। जो इनकी सगति करके अपने ज्ञानादि गुण की इज्जत वढाना चाहता है, वह अविवेकी है।

७३ क्रोध, लोभ, भय और हँसी इन चार कारणो द्वारा जो झूठ बोला जाता है, वह झूठ बोलना महापाप है। अब हे चेतन! जो तू अपना आत्मा का कल्याण करना चाहता है तो असत्य का त्याग कर दे। जो उक्त बातो को जानकर भी त्याग न करे, वह अविवेकी है।

७४. क्लेश, हँसी, मैथुन, राग, शोक, चिन्ता, निद्रा, वैर, तृष्णा और परनिन्दा ये दस बाते घटाने से घट सकती है, बढाने से बढ सकती हैं। इसलिये ज्ञानी को घटानी चाहिये।

७५. ज्ञान बढाने के लिये निम्न लिखित दस उपाय हैं— आहार थोडा करना, निद्रा थोडी लेना, थोड़ा बोलना, विद्वानों की संगति, क्रोध नही करना, विनय का पूर्ण पालन करना, पचेन्द्रियो को वश मे करना, अनेक शास्त्रो का मनन करना, ज्ञानवान गुरु से पढना, पूर्ण उद्यम करना, इन उपायों से ज्ञान की वृद्धि करना चाहिये, यदि न करे तो अज्ञानी है।

७६ जीव को निम्नलिखित दस प्रकार की सामग्री मिलना महादुर्लभ है—मनुष्य जन्म, आर्य देश, उत्तम कुल, लम्बी आयु, इन्द्रियो की पूर्णता, निरोग शरीर, साधु सतो की सेवा, सूत्र सिद्धात का सुनना, धर्म की श्रद्धा करना, काय क्लेश करके धर्म ध्यान करना, यह सामग्री मिलने से जो धर्म में

रुचि रखकर परिग्रह त्यागकर ज्ञान ध्यान तप मे लीन न हो, उसे अविवेकी समझना ।

७७ अत्यन्त दुर्लभ वस्तु को पाकर उसकी बडी यत्न से रक्षा करनी चाहिए । अज्ञानी लोग मोहवश कुटुम्ब परिवार ऐश्वर्य आदि मे फसे रहते है । मेरा-तेरा करते रहते है, परन्तु यह नही समझते कि यह सब यही पडा रह जायेगा और कुछ भी साथ नही जाएगा, एक धर्म ही साथ जाने वाला है । जो इस धर्म को नही सम्भालता वह अज्ञानी है ।

७८ धर्म-धर्म सभी कहते है, लेकिन धर्म वह है जो ससार के दु.खो से छुडाकर असली सुख का स्थान मोक्ष—जो सब प्रकार के कर्मो से रहित अवस्था है—उसमे पहुचा दे, क्रोध मान माया लोभ का त्याग करने से चारित्र बढता है, उस चारित्र से ज्ञानावरणीय आदि कर्मो का क्षय होकर अन त ज्ञान-दर्शन आदि गुण प्रगट होते है, फिर जीव को मोक्ष प्राप्त होता है ।

७९ ससार के सब जीव विषय-कषाय मे फसे हुए अपनी स्वार्थ की बातें करते है । स्वार्थ का शुभ मार्ग वडा कठिन है । एक सम्यग्दृष्टि भव्य आत्मा स्वार्थ और परमार्थ का सच्चा मार्ग जानता है । उसका हृदय सव विषयो से रहित है, सत्य वचन वोलता है । वह किसी का विरोधी नही है, उसे पर्याय सम्वन्धी वुद्धि नही है, इसलिए वह मोक्ष-मार्ग मे लगा है । अपनी आत्मा को देह से भिन्न समझकर मुनि व्रत धारण किए हैं, उसकी सेवा करना ज्ञानी का कर्त्तव्य है ।

८० ससार मे कोई प्राणी सुखी नही है, जहां देखो वहाँ

जीव कर्मो के कारण दुखी ही दिखाई देते है, कितने ही अज्ञानी जीव ससार मे ही सुख मान रहे है, परन्तु यह मानना भूल है। यदि अग्नि मे शीतल गुण हो तो संसार मे सुख हो, इसलिए जब तक ससार का त्यागकर मोक्ष-मार्ग प्राप्त न हो अर्थात् मुनि व्रत स्वीकार न करे, तब तक दुखी ही है।

८१ हे चेतन! तू इस ससार मे क्यो भुला रहा है? अज्ञान दशा मे पडा हुआ मेरा-तेरा कर रहा है ? सासार मे कोई किसी का नही है। जिसका स्वार्थ सिद्ध होता है वह प्रसन्न और स्वार्थ सिद्ध नही होता वह नाराज हो जाता है। अरे भोले जीव, तुझे कुछ नही सूझना, लेकिन फिर बहुत दुख भोगना होगा। ऐसा विचार करके मोह को हटा दे। जो नही हटाता तो वह अज्ञानी है।

८२ हे जीव! तूने पूर्व जन्म मे अच्छा पुण्य उपार्जन नही किया था, अत दुख पा रहा है, अगर अब भी पुण्य सग्रह नही करेगा तो आगे भी दुख भोगना पडेगा। तेरी आजीविका पराधीन है, अतः पाप कर्म छोड पुण्य कर्म कर। जो नही करेगा तो वह अज्ञानी है।

८३ हे जीव! तू पाप से धन सग्रह करके यह सोचता है कि यह दुख मे काम आवेगा, यह सोचना तेरी भूल है। पापोदय से लक्ष्मी नष्ट हो जाएगी। इसलिए आत्मोद्धार कर अगर न करेगा तो तू अज्ञानी है।

८४ हे जीव! तू पेट के लिए अनर्थ कर्म से पाप बन्ध क्यो करता है ? प्रारब्ध के अनुसार जरूर मिलेगा। पाप से कुछ नही मिल सकेगा। ऐसा विचार कर, आत्मा मे लीन हो।

यदि आत्मा मे लीन न होगा तो अज्ञानी है ।

८५. दीपक सबको प्रकाश देकर भी अपने नीचे अन्धकार रखता है, ऐसे ही अज्ञानी जीव पर उपदेश मे निपुण होकर भी अपनी तरफ से अयोग्य रहते हैं । अपने अज्ञान को नही मिटाते । हे जीव ! तू कर्मों का नाश करके मोक्ष प्राप्त कर ले । क्षमा, विनय, सतोष, सत्य को धारण कर । इनको यदि धारण न करेगा तो अज्ञानी है ।

८६ ससारी जीव इच्छानुसार बात बना झगडते हैं, तत्व की बात नही समझते । काम, क्रोध, लोभ के त्याग से जीव की विशुद्धि होती है । इसके बिना त्यागे मुक्ति असम्भव है । कामी, क्रोधी के त्याग और नियम व्यर्थ है । ऐसा विचार वाद विवाद मे अपना अमूल्य समय न खोवो ।

८७ मनुष्य वही है जो आत्मोद्धार मे प्रयत्नशील हो ।

८८ मनुष्य का सब से बडा गुण सदाचार और विश्वास-पात्रता है ।

८९ मनुष्य वही है जो अपनी प्रवृत्ति को निर्मल करता है ।

९० आत्म-गौरव इसीमे है कि विषयो की तृष्णा से बचा जावे । मानव पर्याय का अमूल्य समय न खोवो ।

९१ वह मनुष्य मनुष्य नही, जो निरोग होने पर भी आत्म कल्याण से विमुख हो ।

९२ मनुष्य वही है जो अपने वचनो का पालन करे ।

९३ ससार स्नेहमय है । इस स्नेह पर जिसने विजय प्राप्त करली वही मनुष्य हैं ।

९४ मनुष्य पर्याय की सार्थकता ईसी में है कि निष्कपट रहे ।

९५. सब से ममत्व त्यागकर अपना भविष्य निर्मल करो ।

९६. सत्सग से इन्द्रिय सयम और मन की शुद्धि होती है। इसलिए सत्सग का निरंतर प्रयत्न करते रहो ।

९७ सांसारिक आत्मा के तीन बलहो ते है—(१)कायिक, (२) वाचनिक, (३) मानसिक । जो बलिष्ठ होते है, वे ही जीवन का वास्तविक लाभ ले सकते है ।

९८ जिनका कायबल श्रेष्ठ है, वे ही मोक्ष पथ के पथिक बन सकते हैं । इस प्रकार जब मोक्ष मार्ग मे भी कायबल की श्रेष्ठता आवश्यकता है तो सासारिक कार्य इसके बिना कैसे हो सकते हैं !

९९ जिनमे वचन बल था, उन्हीके द्वारा आजतक मोक्षमार्ग की पद्धति का प्रकाश हो रहा है । उन्ही की अकाट्य युक्तियो और तर्कों द्वारा बडे बडे वादियो का गर्व दूर हुआ है ।

१००. मनोबल मे वह शक्ति मौजूदा है, जो अनत जन्म जित कलको की कालिमा को एक क्षण मे पृथक कर देती है ।

स्त्रियो के मूल गुण

ससार मे समाज रूपी शकट (गाडी) दुनियन्त्रित पद्धति से तब ही चल सकता है, जब उसके पुरुष और स्त्री रूपी दोनो चक्र एक सरीखे सुदृढ और सदाचारी होवें।

जैसे पुरुष का विद्वान होना आवश्यक है, उसी प्रकार किंबहुना उससे भी अधिक स्त्री का विदुषी होना आवश्यक क्योकि स्त्री पुरुष की जननी है। विदुषी माता का पुत्र अवश्यय, ही विद्वान होता है।

वालको मे अनुकरण करने की शक्ति वहुत तीव्र होती है। विदुपी माता का पुत्र अपनी माता के सम्पूर्ण सद्गुणो का अनुकरण करके जगत मान्य हो जाता है।

गृह (घर) वही है, जिसमे सदाचारिणी और विदुषी गृहणी (घर वाली हो,) काष्ठ मिट्टी के ढेर को गृह नही कहते हैं।

स्त्री की शोभा पतिव्रत है, और उस पतिव्रत की सच्ची पालन तब तक नही हो सकती, जब तक कि वह सुशिक्षिता विद्यावती नही हो। अतए पतिव्रतव धर्म से सुशोभित होने के लिये स्त्री का बिद्या पढ़ना मुख्य कर्तव्य है।

शील रत्न को जो स्त्री अपने हृदय मे धारण किये है, उसे ससार के अन्य चमकते हुए रत्नो के आभूषणो को आवश्यकता नही है।

उस रति-रभा के रूप को जीतने वाली स्त्री से जो कि

पर-पुरुष रत है, वह कुरूपिनी, दरिद्रा, भिखारिणी हजार गुणी अच्छी है जो कि अपने पति को ही अपना सर्वस्व समझती है।

विचार दृष्टि से देखा जावे तो स्त्री के लिये पति सेवा के अतिरिक्त और कोई व्रत उपवासादि महत् फलप्रद नही है। जो स्त्री पतिव्रता है, उसके सम्पूर्ण व्रतो का पालन स्वय हो जाता है, परन्तु जो दुराचारिणी है वह नाना प्रकार के व्रत उपवास करती हुई भी दुर्गति की पात्र होती है।

स्त्रियो का परम सुन्दर आभूषण लज्जा है सदाचारिणी स्वतन्त्रता का तिरस्कार करती है। वे बालापन मे पिता के, युवावस्था मे पति के और वृद्ध काल मे पुत्री के अधीन ही रहती है वह पारतत्र्य स्त्रियो के शीलरक्षा का अजेय किला है।

स्त्रियो को एक शरीर से दो जन्म धारण करने पडते है। जिस दिन पति के घर मे प्रवेश होता है, स्त्री के द्वितीय जन्म का वही पहला दिन है। पहले जन्म की शिक्षा दूसरे जन्म मे उसे सुखी और यशस्वी बनाती है। दूसरा जन्म बडी सावधानी से अतिवाहित करना चाहिये।

अपने पति के प्रत्येक कार्य मे जो मत्री का कार्य देती है, सेवा करने मे जो दासो के समान हैं, भोजन कराने मे जो माता का भाव धारण करती है, शय्या मे जो रभा के तुल्य सुखदायिनी हैं। पृथ्वी के समान जिनमे क्षमा है और जो सम्पूर्ण गृह को धर्म मार्ग पर चलती हैं। वह स्त्री, स्त्री हैं।

पति के प्रत्येक आचार विचार और शरीर की व्यवस्था जो सहस्र नेत्रो से देखती है, परन्तु पर पुरुप की ओर देखने मे जो नेत्र शक्ति हीन हैं वही स्त्री सुदृशी हैं।

स्त्रियो के नष्ट होने के सात द्वार हैं। पिता के घर स्वतन्त्रता से रहना, मेलो मे जाना, पर पुरुषो के साथ वार्तालाप का सम्बन्ध रखना, पति का निरतर विदेश मे रहना, पुश्चलि सगति रखना, अक्षर शत्रु रहना और पति का बुढापा।

द्रोपदी, सीता, अजना सुन्दरी, मनोरमा सुलोचना आदि जितनी पुराण प्रसिद्ध सच्चरित्र स्त्रिया हुई हैं वे पढी लिखी पडित थी, अतएव कहा जा सकता है कि स्त्रियो को सच्चरित्रा बनने मे निर्मल विद्या एक कारण है।

जब तक स्त्रियाँ शास्त्र विहित श्रावक कर्मो को अर्थात् गृहस्थ के आचार विचारो मे दक्ष नही होगी, तब तक पुरुष अपने धर्म की भली भाति रक्षा करने मे समर्थ नही हो सकते।

स्त्रियाँ स्वभावत. पडिता होती हैं। उनके कोमल, कमनीय हृदय पर सविद्या बहुत शीघ्र अपना अधिकार जमा लेली हैं, स्त्रियो को धर्म शिक्षा देना गृहस्थ जीवन का धर्म है।

स्त्री का अपने धर्म से एक बार ही पतित होना असह्य अक्षम्य और कुल विप्लवकर है। इसलिये उसे अपने धर्म मे स्थिर रहने के लिये अपने प्राणो से भी अधिक सचेत रहना चाहिये।

क्षण भर के सुख के लिये कामाध होकर जो स्त्रिया पतित हो जाती हैं, वे अपने को अपने हाथ से एक बडे भारो भारी भयानक समुद्र मे पटक देती हैं, नरको के घोर दु खो मे उन्हे अनेक सागर पडे-पडे बिलबिलाना पडता है।

स्त्री की पर्याय स्वभाव से ही निद्य और पामर कही जाती है, परन्तु वह सद्विद्या सदाचार और सुशीलता से

जगद्वन्द्य और परम पवित्र भी मानी गई है। पुराण प्रसिद्ध स्त्रियो का लोग आज आदर दृष्टि से नामोच्चारण करते है।

स्त्री से जगत पूज्य सर्वज्ञ देव उत्पन्न होते है। सर्वज्ञ देव तीर्थंकर से मोक्ष मार्ग का प्रकाश परम हितकारी शास्त्र उत्पन्न होता है। शास्त्र से ससार के पाप समूह नष्ट होते है और पापो के नाश होने से बाधा रहित सुख की प्राप्ति होती है। इस प्रकार परम्परागत मोक्ष सुख की देने वाली सदाचारिणी कुलीन स्त्री को पवित्र जानकर सज्जन स्वीकार करते हैं।

मंगल रूप भक्ति रस के सुमन

चाहे अक्षर ज्ञान से, अज्ञानी हू नाथ।
फिर भी भक्ती प्रबल है, तुम्हे नमाऊ माथ ॥१

सोकर उठते ही प्रातः जो, जिनवर के दर्शन करता है।
उसका हो जाता जन्म सफल, तीर्थ करपद को पाता है ॥२

सकल महोत्सव उस घर होगें, जहँ जिनवाणी होय प्रकाश।
भव्य जीव पढ़ समकित धारें, करते अष्ट कर्म का नाश ॥३

अन्ध कूप सम मातृ उदर मे, पडा हुआ था मै भगवान।
पुण्य योग से बाहर निकला, मिला आपका दर्श महान ॥४

दिन मे रवि से निशि मे शशि से, नही प्रयोजन रहा मुझे।
नाश हो गया सारा ही तम, प्रभु की वीतराग छवि से ॥५

श्वेत सुगन्ध कोटि पुष्पो से, मन्त्र राज जो जपते है।
चक्रीपद को सहज पाय कर, मुक्ति वधू को वरते है ॥६

धर्म भावना

(श्री १०८ स्व०मुनि श्री सुधर्मसागरजी रचित)।

इस ससार मे यह दयामय धर्म चिन्तामणि रत्न के समान है अथवा महा कल्पवृक्ष के समान है, यही धर्म समस्त सिद्धियो की निधि है और यही धर्म ससार से पार कर देने वाला है। इसी धर्म को भगवान जिनेन्द्र देव नें निश्चय और व्यवहार के भेद से दो प्रकार का बतलाया है—इनमे से पहिला निश्चय धर्म परमार्थरूप है, वस्तु स्वभाव रूप है, अमूर्त है, क्रियारहित है, नित्य है, आत्ममय तत्व से अभिन्न है और शुद्ध आत्ममय है। यह निश्चय धर्म सिद्धो मे ही होता है, अन्य किसी जीव मे नही होता। दूसरा व्यवहार धर्म दयामय है, सबका हित करने वाला है, लौकिक है, व्यवहार है और चारित्रमय है। जो व्यवहार धर्म है वही लौकिक धर्म है। भगवान जिनेन्द्र देव के शासन में व्यवहार धर्म और लौकिक धर्म मे कोई भेद नही है वह व्यवहार धर्म क्रियारूप है, चारित्ररूप है, और स्वर्ग, मोक्ष के समस्त सुखों को देने वाला है। जो धर्म इन ससारी जीवो को पाप रूपी कीचड से उठाकर मोक्ष पद मे विराजमान कर दे, उसको व्यवहार धर्म कहते है। जैन शास्त्रो मे अणुव्रत और महाव्रत के भेद से उसके दो भेद बतलाये है

भगवान जिनेन्द्र देव ने साध्य-साधक के भेद से उस धर्म के दो भेद बतलाये है। परमार्थ धर्म साध्य है और लौकिक वा व्यवहार धर्म साधक है। जैनधर्म मे जितने

लौकिकाचार निरूपण किये गये हैं अथवा गृहस्थ और मुनियो के जो-जो धर्म निरूपण किये गये हैं, वह सब धर्म का स्वरूप समझना चाहिये।

वत्थुसुहावो धम्मो उत्तमखमादि दस लक्खणो धम्मो।
रयणत्त पंचधम्मो जीवाण रक्खण धम्मो ॥

प्रायश्चित्तादिक सब उसी धर्म के उत्तर भेद हैं। उसी धर्म के उत्तम क्षमादिक दस भेद है, अथवा रत्नत्रय आदि अनेक भेद है, यही धर्म ससार रूपी समुद्र से पार कर देने वाला है और कर्मो को नाश कर देने वाला है। इसी धर्म के बिना इस जीव ने अनेक महा दुखो की परम्परा प्राप्त की है। इसलिए समस्त प्रयत्न करके इस श्रेष्ठ धर्म को धारण करूगा और व्यामोह उत्पन्न करने वाले समस्त मिथ्या मतो का त्याग करूगा। भव्य जीवो को मोक्ष प्रदान करने वाले इस निर्मल श्रेष्ठ धर्म को सदा पालन करते रहना चाहिये, जिससे कि आकुलता रहित, रोग रहित, नित्य सुख की प्राप्ति हो जाय। जो ससार, शरीर, धन और भोगो से विरक्त है, ऐसे महात्माओ को बारह भावनाओ का चिन्तवन कर विषयो की इच्छा छोड देनी चाहिये, आत्मा को शुद्ध करने वाले और भावनाओ से भरपूर, ऐसे उस भव्य पुरुष को श्रेष्ठ चारित्र के पालन करने मे लग जाना चाहिये और जैन दीक्षा को धारण कर सुधर्म या श्रेष्ठ धर्म को धारण करना चाहिये।

श्री श्री श्री १००८ देवाधिदेव भगवान ऋषभदेव की स्तुति

(श्री १०८ श्री मुनिराज सुधर्मसागरजी महाराज विरचित)

श्री नाभिसूनोः पदपुंडरीकः,
श्रियविधत्तात्सुख शाति रूपम् ।
यं प्राप्य भव्या अति दुर्लभंत,
गच्छन्ति पारं भवदुःख वार्धेः ॥१॥

अर्थ—भगवान श्री ऋषभदेव के चरण कमल हम भव्य जीवो को सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र रूपी लक्ष्मी देवें। वह रत्नत्रय रूपी लक्ष्मी सुख स्वरूप है तथा शाति स्वरूप है, उन भगवान ऋषभदेव के अत्यन्त दुर्लभ चरण को पाकर ही भव्य जीव इस अपार ससार के महादुःख रूपी समुद्र से पार हो जाते हैं ॥१॥

वैदेहतो वर्णमयी व्यवस्थां, संस्थापयामास जगद्धिताय ।
अनादिसृष्टेः प्रभवस्य वीजं,कार्यक्रमं यो व्यरचत्सुसृष्टा ॥२

अर्थ—विदेह क्षेत्र मे क्षत्रिय वैश्य शूद्र जैसी वर्ण व्यवस्था अनादि काल से चली आ रही है वही वर्ण व्यवस्था आदि सृष्टा भगवान ऋषभदेव ने ससारी जीवों का हित करने के लिए स्थापना की। तथा अनादि काल से चली आई इस सृष्टि को सदा प्रचलित रहने के कारण जो भी कार्य क्रम है वे सब भगवान ने प्रगट किये ॥२॥

ञ्चरण से कर्मों का नाश किया और फिर वे भगवान मोक्ष मे जा विराजमान हो गये ॥८॥

त्वं नाथ ! मीतोसिपुराण वेदे
जगत्पिता शासक आदि सृष्टा।
विभुः स्वयभू शिव भूरजन्मा,
आदीश्वरो लोकपिता महोवा । ६

अर्थ—हे नाथ ! अनादि काल से चले आये स्याद्वादमय श्रुत ज्ञान से आप जगत्पिता, शासक, आदि सृष्टा, विभु (ज्ञान के द्वारा सर्वत्र व्यापक), स्वयभू (अपने आप उत्पन्न होनेवाले) शिवम (जिनका जन्म सब जीवो को कल्याणमय हो), अजन्मा (जन्म रहित), आदीश्वर और तीनो लोको के पितामह आदि नामो से कहे जाते है ॥६॥

वेद प्रकाशाय नमोस्तु तुभ्य,
सस्कारदात्रे च नमोस्तु तुभ्यम् ।
वर्णादि कर्त्रेहि नमोस्तु तुभ्य,
मोक्षस्वरूपाय नमोस्तु तुभ्यम् ॥१०

अर्थ—हे प्रभो ! आप स्याद्वादमय (श्रुतज्ञान) को प्रकाशित करने वाले है, इसलिये आप को नमस्कार हो । आप सस्कारो का प्रचार करने वाले हैं, इसलिये आप को नमस्कार हो । आप वर्ण व्यवस्था को स्थापन करने वाले है, इस लिये आपको नमस्कार होवे और आप साक्षात मोक्ष स्वरूप है, इसलिये आपको नमस्कार होवे ।.१०॥

भगवान महावीर स्वामी की स्तुति

रचयिता—स्व० पूज्य आ० सुधर्मसागर जी महाराज

श्रीकुण्डनाख्ये नगरे विशाले, कृतावतारो नृसुरैश्च पूज्य ।
कामेभसिह.शुभसिह चिन्हः, वद्योस्तिवीरोजिनवर्द्धमान ।१

अर्थ—जिन्होने कुण्डनपुर नाम के विशाल नगर में अवतार लिया है, जो नरेन्द्र आदि सब के द्वारा पूज्य है, काम रूपी हाथी को मर्दन करने के लिये सिह है और सिह के शुभ चिन्हो से शोभायमान है, ऐसे श्रीवीर जिनेन्द्रदेव सब के द्वारा वंदनीय हैं ।

यस्येह धर्मोस्ति पर पवित्र ,अर्थस्य कामस्य सुखस्य दाता ।
स्वर्गापवर्गस्य च साधकोऽत्र,त वीरनाथ प्रणमामि देवम् ।२

अर्थ—जिन भगवान वीरनाथ का धर्म परम पवित्र है, अर्थ-काम और सुख को देने वाला है, और स्वर्ग-मोक्ष का साधक है, ऐसे देवाधिदेव भगवान् वीरनाथ को मै नमस्कार करता हूं ।

क्षेत्रे विदेहेऽस्ति च योऽहि धर्म, नाभेयनाथेन चय प्रवृत्त ।
द्वाविंशतीर्थेश्वरपालितो यः,वीरेणोन्त्रोक्तोहि स एव धर्म ।३

अर्थ—जो धर्म विदेह क्षेत्र मे अनादि काल से चला आ रहा है, भगवान् ऋषभदेव ने इस युग मे जिसकी प्रवृत्ति की है तथा भ० अजितनाथ से लेकर पार्श्वनाथ भगवान् तक

वाईस तीर्थंकरो ने जिसका पालन किया है वही धर्म भगवन् महावीर स्वामी ने निरूपण किया है।

सनातनो नित्यमनादिकोसौ, क्षेत्रेक्वचित्क्वापिकदापिकाले।
केन प्रकारेण कथञ्चिदत्र, नोपेति धर्म परिवर्तन स।४

अर्थ—यह धर्म सनातन है, नित्य है और अनादि काल से चला आ रहा है। यह धर्म किसी भी क्षेत्र मे तथा किसी भी काल मे किसी भी प्रकार और किसी भी रूप से बदल नही सकता। यह सदा जैसा का तैसा ही उसी प्रकार बना रहता है।

धर्म क्रियाया परिवर्तन चेत्, हिसा भवेद्धर्म इहापि कुत्र।
पुण्य भवेदाव्यभिचारतश्च, एव न भूतो न भविष्यतीह।५

अर्थ—यदि काल के अनुसार धर्म क्रियायें बदल जायें तो इस संसार मे किसी क्षेत्र मे हिसा भी धर्म हो सकता है अथवा व्यभिचार सेवन से भी पुण्य की प्राप्ति हो सकती है, परन्तु ऐसा न कभी हुआ है और न कभी हो सकता है।

कालद्भवेत्सोपि जनानुकुल, अक्षानुरक्ता कथयन्ति जीवा।
शोच्या कथते नविवेकशून्या, पापक्रिया क्वापि भवेन्नधर्म।६

अर्थ—इन्द्रियो के विषयो के लोलुपी कितने ही जीव यह कहते हैं कि काल के अनुसार यह धर्म भी मनुष्यो के अनुकूल हो जाता है, परन्तु ऐसे लोग विवेक शून्य हैं और सदा शोचनीय हैं, क्योकि पाप रूप क्रियायें कभी धर्म रूप नही हो सकती।

त्वच्छाशनं पूततम विशुद्ध, त्वदीयधर्मोऽस्ति पर पवित्रः ।
द्वयोस्तयोर्नो मलिनप्रवृत्ति ,ततोऽसि धन्यो जिन वीरनाथ ।७

अर्थ—हे भगवान् ! आपका शासन परम पवित्र है और विशुद्ध है । आपका धर्म भी परम पवित्र है । इन दोनो की प्रवृत्ति कभी मलिन नही होती । इसलिये हे जिन ! हे वीरनाथ ! आप बहुत ही धन्य हैं ।

अनादिधर्म स तु जैनधर्म , द्वेधा मतो निश्चयधर्म आद्य ।
द्वितीयधर्मो व्यवहारनामा, वीरेण चोक्तो जनताहिताय ।८

अर्थ—यह जैन धर्म अनादि काल से चला आ रहा है । वह धर्म दो प्रकार है—पहला निश्चय धर्म और दूसरा व्यवहार धर्म । इन दोनो का स्वरूप भगवान् वीरनाथ ने भव्य जीवो के हित के लिए निरूपण किया है ।

क्रियाविहीनो हि सदात्मरूप ,वस्तुस्वभाव स च निर्विकल्प ।
अमूर्तको निश्चयधर्म एष, वीरेण चोक्तो जनता हिताय ।९

अर्थ—यह निश्चय धर्म क्रिया रहित है, सदा आत्म स्वरूप है, आत्म वस्तु के स्वभाव रूप है, निर्विकल्प रूप है और अमूर्त है ऐसा यह निश्चय धर्म भव्य जीवो के हित के लिये भगवान् वीर नाथ ने निरूपण किया है ।

क्रियात्मको यो व्यवहारनामा,क्रियास्ति सा या चरणानुकूला
आज्ञानुरूपा तवशासनस्य, क्रियैव सा वीरजिनस्य धर्म. ।१०

अर्थ—जो क्रियात्मक धर्म है वह व्यवहार धर्म कहलाता है तथा क्रिया वह कहलाती है जो सम्यक् चारित्र के अनुकूल

हो और आपके शासन की आज्ञा के अनुकूल हो। ऐसा यह क्रियात्मक धर्म का स्वरूप भगवान् वीरनाथ का कहा हुआ समझना चाहिए।

अस्तीह मुख्यो व्यवहारधर्म, न त विना निश्चयधर्मसिद्धि।
गृहोशिनाचास्ति यतीशिर्नावा, कियाकरोसौव्यवहारधर्म ११

अर्थ—व्यवहार धर्म भी इसी ससार मे मुख्य धर्म है। उसके बिना निश्चय धर्म की सिद्धि कभी नही हो सकती। गृहस्थ और मुनि दोनो के लिये क्रिया रूप व्यवहार धर्म का निरूपण किया गया है।

आसप्तमान्त व्यवहारधर्म, न त विना काचन मोक्षसिद्धि।
स्वर्गापवर्गस्यचसाधकोस्ति, प्रोक्त स मुख्योव्यवहार धर्म १२

अर्थ—सातवे गुण स्थान तक व्यवहार धर्म माना जाता है उसके बिना मोक्ष की सिद्धि कभी नही हो सकती। यह व्यवहार धर्म मुख्य धर्म है और मोक्ष को सिद्ध करने वाला कहा गया है।

शिवस्य मार्गो व्यवहारधर्म, मार्गो मुनीनां व्यवहारधर्म।
गुप्त्यात्मकोसौव्यवहारधर्म, वीरेणचोक्तो जनताहिताय १३

अर्थ—मोक्ष का मार्ग रत्नत्रय भी व्यवहार धर्म है, मुनियो का मार्ग भी व्यवहार धर्म है तथा तीन गुप्तियो का पालन करना भी व्यवहार धर्म है। यह सब व्यवहार धर्म का स्वरूप भगवान वीरनाथ ने भव्य जीवो का हित करने के लिये निरूपण किया है।

महाव्रतस्याचरण स एव, अणुव्रतस्याचरणं स एव ।
वीरागमेऽसौ व्यवहारधर्म ,वीरेण चोक्तो जनताहिताय ।१४

अर्थ—महाव्रतो का पालन करना भी व्यवहार धर्म है और अणुव्रतो का पालन करना भी व्यवहार धर्म है । भगवान् वीरनाथ के आगम मे यह व्यवहार धर्म लोगो का हित करने के लिए भगवान् वीरनाथ ने निरूपण किया है ।

पापाप्रवृत्तिर्जिनमार्गरूपा,यो यो विचारोस्ति स आगमोक्त ।
सएव धर्मोव्यवहारनामा,वीरेणचोक्तोजनता हिताय ।।१५

अर्थ—जिन मार्ग के अनुसार होनेवाली जो-जो शुभ प्रवृत्तिया है तथा आगम के अनुकूल जो-जो विचार है, वह सब व्यवहार धर्म है और भव्य जीवो का कल्याण करने के लिये भगवान वीरनाथ ने उस धर्म का निरूपण किया है ।

रीति प्रवृत्तिश्च कुलस्य यत्र,आचार अस्तीह जनस्य लोके ।
आज्ञा स्वरूपो जिनशासनस्य,स एव धर्मो व्यवहारनामा ।१६

अर्थ—इस ससार मे लोगो के जिनशासन की आज्ञा के अनुकूल जो-जो कुल की रीति और कुल की प्रवृत्ति है, वह सब व्यवहार धर्म कहलाता है ।

शुद्धिश्च पिडस्य सुभोजनस्य,अपत्यशुद्धिश्च चरित्रशुद्धि ।
रज:स्वलासूतकपातशुद्धि ,गर्भस्य शुद्धिश्च मलस्यशुद्धि.।१७

यास्तीह शुद्धिश्चरणानुकूला, वाज्ञानरूपा जिनशासनस्य ।
शुद्धि.समस्ता व्यवहारधर्म:,वीरेण चोक्तोजनताहिताय ।१८

अर्थ—पिंड की शुद्धि, भोजन की शुद्धि, सतान की-

शुद्धि, चरित्र की शुद्धि, रजस्वला की शुद्धि, सूतक-पातक की शुद्धि, गर्भ की शुद्धि, मल की शुद्धि तथा और भी जो-जो सम्यक चारित्र के अनुकूल शुद्धि है, जो-जो शुद्धि जिन-शासन की आज्ञा के अनुकूल है, वह सब प्रकार की शुद्धि व्यवहार धर्म है और वह शुद्धि रूप व्यवहार धर्म भव्य जीवो का कल्याण करने के लिये भगवान वीरनाथ ने निरूपण किया है।

जातिव्यवस्था व्यवहारधर्म , वर्णाश्रमोसौ व्यवहारधर्म ।
भुक्तिक्रियाचास्तिसएवधर्म ,वीरेणचोक्तोजनताहिताय।१६

अर्थ—जाति-व्यवस्था व्यवहार धर्म है, वर्णाश्रम को मानना व्यवहार धर्म है, शुद्ध और आहारदान पूर्वक भोजन की क्रिया करना भी व्यवहार धर्म है। वह सब धर्म का स्व-रूप भव्य जीवो के हित के लिये भगवान वीरनाथ ने निरूपण किया है।

जातिश्च वर्णश्च भवत्यनादि , स्वरूपभेदाच्च तयोर्विभेद ।
द्वयोस्ततो लक्षणतोपि भेद ,वीरेण चोक्तो व्यवहारधर्म ।२०

अर्थ—इस ससार मे वर्ण व्यवस्था भी नित्य है, और जाति व्यवस्था भी नित्य है। तथा दोनो का स्वरूप अलग-अलग है। इसलिये दोनो मे भेद भी है और लक्षण दोनो अलग-अलग होने से भी दोनो मे भेद है। यह सब व्यवहार धर्म भगवान वीरनाथ ने निरूपण किया है।

सस्कारमुख्यो व्यवहारधर्मै, सस्कार हीनस्य च नाधिकार ।
दीक्षासु दानेषु जिनार्चनेषु, द्विजस्यवीरेण जिनेनचोक्त ।२१

अर्थ—इस व्यवहार धर्म मे गर्भाधानादिक सस्कार ही मुख्य माने जाते हैं जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य सस्कार-हीन है, उनको दीक्षा-दान और जिन पूजा करने का कोई अधिकार नही है। यह सब कथन भगवान वीरनाथ ने निरूपण किया है।

कुलेन जात्या भुवि योविशुद्ध सस्कारभाक्सोस्तु मतोजिनेन
शूद्रस्य नास्तीह च सोधिकार. कार्य सदा कारणतोनुमेय।२२

अर्थ—इस ससार मे जो कुल और जाति से शुद्ध है उसी के संस्कार हो सकते हैं, ऐसा भगवान जिनेन्द्र देव का मत है। सास्कार करने का अधिकार शूद्रो को नही है। क्योकि वे कुल जाति से शुद्ध नही है। किसी भी कार्य का अनुमान उसके कारणो से किया जाता है। इसलिये शूद्रो को संस्कारो के न होने के कारण कुल-जाति अशुद्धता ही समझनी चाहिए।

निकृष्टगोत्रोदयतोऽघपाकात्, सावद्यकर्माश्रितजीवनत्वात्।
जैनस्य मातगसुतस्य नास्ति,स्पर्शाधिकारोव्यवहार धर्मे।२३

अर्थ—चांडाल यदि जैनधर्म को भी धारण करता हो, तो भी उसके नीचे गोत्र का उदय होने के तथा पाप कर्म का तीव्र उदय होने से उसका जीवन पाप रूप कर्मो के आश्रय होने से व्यवहार धर्म मे उसको स्पर्श करने का अधिकार नही बतलाया गया है।

सस्पर्शनेऽस्पृश्यजनस्य लोके,स्नान मुनीनां च सहोपवासैः।
वीरागमे वीरजिनेन चोक्तः, सर्वत्रनाथेन जगद्धिताय।२४

अर्थ—इस ससार मे चाडाल आदि अस्पृश्य लोगो का स्पर्श हो जाने मात्र से मुनियो को भी उपवास के साथ-साथ स्नान करना बतलाया है। मुनि स्नान के त्यागी होते हैं तथापि चाडाल आदि का स्पर्श हो जाने पर वे स्नान करते है और उपवास करते है। इस प्रकार सर्वज्ञ देव भगवान वीर नाथ ने ससार का अन्त करने के लिये अपने आगम मे निरूपण किया है।

न स्पर्श्यशूद्रस्य च पूजनेषु,द्विजेन सार्द्ध सह भोजनेषु।
त्रैवाहिके कर्मणिवीरधर्मे,नचाधिकारोस्तिकदापिकाले।२५

अर्थ—भगवान वीरनाथ के धर्म मे स्पृश्य शूद्रो को न तो भगवान की पूजन करने का भी अधिकार है और न विवाह आदि कार्यों मे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यो के साथ पंक्ति-भोजन करने का अधिकार है।

विवाह सस्कारइहस्वजात्या,जात्यन्तरेनापिभवेद्विजात्याम।
वीरेण चोक्तो निजशासनेषु, सर्वज्ञनाथेन जगद्धिताय।२६

अर्थ—विवाह सस्कार अपनी ही जाति मे होता है, दूसरी जाति वा विजाति मे कभी नही होता है। यही मत सर्वज्ञदेव भगवान् वीरनाथ ने ससार के प्राणीमात्र का हित करने के लिए अपने शासन मे निरूपण किया है।

वैधव्यदीक्षा तव शासनेस्ति,पुनर्विवाहो न मतो हि तासाम।
स्त्रीणाद्विजाना पतिरेक एव,हेवीर ते शासनमस्तिपूतम २७

अर्थ—हे प्रभो! वीरनाथ भगवान्! आपके मत मे

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यो की विधवा स्त्रियो को वैधव्य-दीक्षा निरूपण की है। विधवा हो जाने पर उनके लिये पुनर्विवाह का विधान नही है। क्योकि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यो की स्त्रियो के एक ही पति होता है। इसीलिए हे वीरनाथ ! आपका शासन अत्यन्त पवित्र माना जाता है।

कथं कदाचारकुरीतिवृत्तिः, पूते पवित्रेस्ति च वीरधर्मे।
कालात्कदाचारमिहात्र धर्मे,वदन्ति ते नाथ विवेकशून्यः।२८

अर्थ—हे नाथ ! यह भगवान् वीरनाथ का धर्म अत्यन्त पवित्र और शुद्ध है। इसमे कदाचार और कुरीतियो की प्रवृत्ति भला कैसे हो सकती है ? जो पुरुष इस पवित्र धर्म मे भी काल के अनुसार कदाचार की प्रवृत्ति मानते हैं तथा कहते है, वे अवश्य ही विवेकरहित है।

श्रद्धानमात्रागमकस्य मुख्य, वीरस्य ते तद् व्यवहार धर्मे।
श्रद्धानहीनस्यनचास्तिधर्मः,श्रद्धानमादोहिजिनेनचोक्तम्२९

अर्थ—हे वीरनाथ भगवान् ! आपके कहे हुए उस व्यवहार धर्म मे आगम का श्रद्धान करना ही मुख्य धर्म बतलाया है। जो पुरुप आगम का श्रद्धान नही करता, उसके किसी प्रकार का धर्म धारण नही हो सकता, इसीलिए भगवान् जिनेन्द्र देव ने सबसे पहले श्रद्धान का ही निरूपण किया है।

सुदृङ् निमित्तं जिनदर्शनं हि, भव्य प्रभाते जिनदेवभक्त्या।
करोतियःश्रीजिनबिम्बकस्य,दृष्टिःस एवास्तिचवीरधर्मे।३०

अर्थ—सम्यग्दर्शन का कारण प्रति दिन भगवान्

जिनेन्द्रदेव के दर्शन करना है। जो भव्य पुरुष भगवान् जिनेन्द्रदेव की भक्ति पूर्वक प्रातःकाल जिन-बिम्ब का दर्शन करता है उसीको वीरनाथ के धर्म मे सम्यग्दृष्टि कहा है।

सम्यक्त्वभावेन यदा विशुद्ध, मनो भवेच्चारुचरित्ररूपम्।
तदा सजैनोजिनराधकोस्ति,आज्ञाप्रधानी भुवि वीरधर्मे।३१

अर्थ—भगवान् वीरनाथ के धर्म मे जब यह जीव सम्यक् दर्शन पूर्वक सुन्दर विशुद्ध चरित्र को धारण कर अपने मन को उन दोनो मे लगा देता है अर्थात् सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र से जिसका मन शुद्ध हो जाता है, उसी समय वह जैन, भगवान् जिनेन्द्र देव को आराधन करने वाला और आज्ञा प्रधानी माना जाता है।

मिथ्यात्वलीन च सरागभेषा,मूढा न मान्य भुवि देवता सा।
मिथ्यात्वरागादिकदोषहीन, देवो भवेदेव स वीरधर्मे।३२

अर्थ—भगवान् वीरनाथ के पवित्र धर्म मे मिथ्यात्व में लीन रहने वाले और राग-द्वेष रूप भेष को धारण करने वाले मूढ कुदेवता कभी नही माने जाते हैं। जो मिथ्यात्व राग आदि समस्त दोषो से रहित हैं, वे ही देव भगवान् वीरनाथ के धर्म मे माने जाते है।

क्षुधादयो दोषगणा न देवे, सन्तीह मोहादिककर्मनाशात्।
भुक्ति च देवेकवलादिरूपा,मूचुश्च ये ते हि विवेकशून्या ३३

अर्थ—भगवान् अरहत देव के मोहादिक घातिया कर्मों का नाश हो जाता है, इसी लिये उनके भूख प्यास आदि कोई भी दोष नही होता है। जो पुरुष भगवान् अरहन देव

के भी कवलाहार का सद्भाव मानते है, वे अवश्य ही विवेक रहित है।

दोपो भवेच्चेद्यदि देव एव, सदोपदेवो न कदापि मान्य.।
नोचाखिलज्ञोपिभवेज्जिताक्षो, निर्दोषदेवोस्त च वीरधर्मे।३४

अर्थ—यदि देव मे भी भूख-प्यास आदि दोष माने जायं तो इस ससार मे दोष सहित देव कभी मान्य नही हो सकता है। और न वे सदोष देव कभी भी सर्वज्ञ हो सकते है। जो समस्त इन्द्रियों को जीतने वाला और समस्त दोपो से रहित है, भगवान् वीरनाथ के धर्म मे वही देव हो सकता है।

निवृत्तरागस्य जिनस्य वाथ, तदीयमूर्तेरपि वीर धर्मे।
मान्यो न वस्त्रादिकवेपभूपा, समोहरूपो कथितो जिनेन।३५

अर्थ—भगवान् वीरनाथ के धर्म में राग-द्वेष से रहित भगवान् जिनेन्द्र देव के अथवा उनकी मूर्ति के वस्त्राआभरण आदि वेष-भूषा भी नही माना जाता। क्योकि वह वस्त्रभरण की वेष-भूषा मोह रूप है, मोह उत्पन्न करने वाला है और मोह के उदय से होता है ऐसा भगवान वीरनाथ ने निरूपण किया है।

नैर्ग्रंथ्यरूप हि शिवस्य मार्ग:, वस्त्रादिकं रागकरन्तु तत्र।
अतोयतीनां चजिनेशिना च, दैगम्बरीतेऽस्ति★सुधर्मसुद्रा।३६

अर्थ—मोक्ष का मार्ग समस्त प्रकार के परिग्रहो से रहित निर्ग्रंथ रूप है, उनमे वस्त्रादि को धारण करना, राग

★ इस संस्कृत स्तुति के रचयितापरम पूज्य मुनिराज सुधर्मसागर महाराज की मुद्रा भी दिगम्बर है।

उत्पन्न करने वाला है। इसीलिये मुनियो की धर्म मुद्रा और जिनेन्द्र देव की धर्म मुद्रा दिगम्बर रूप ही मानी जाती है। हे भगवान् ! आपका यही निर्मल मत है।

मुक्तिर्नवासहननाद्यभावात्,स्त्रीणाहि निर्ग्रंथकताद्यभावात।
प्रमाणभूतो भुविवीरधर्म ,न शासने तेश्तिकदापि बाधा।३७

अर्थ—स्त्रियो के न तो वज्र वृषभ नाराच संहनन होता है और न उनके कभी निर्ग्रंथ अवस्था होती है। इसीलिये उनकी स्त्री पर्याय मे कभी मोक्ष-प्राप्ति नही हो सकती। हे वीरनाथ ! आपके शासन मे कभी किसी प्रकार की बाधा नही आती। इसीलिए भगवान् वीरनाथ का धर्म इस ससार मे प्रमाण माना जाता है।

स्नानेन गगादि नदीषु मोक्षो, भवेन्न सत्य बहुजीवघातात्।
तपो हि कर्मक्षयमूल हेतु, मोक्षो भवेत्तेन च वीरधर्मे।३८

अर्थ—हे भगवान् महावीर स्वामिन् ! आपके धर्म मे गगा आदि नदियो में स्नान करने से मोक्ष की प्राप्ति नही मानी है। सो ठीक ही है। क्योकि नदियो मे स्नान करने से अनेक जीवो का घात होता है। समस्त कर्मों के नाश होने का मूल कारण तपश्चरण है। इसलिये हे नाथ ! आपके धर्म मे तपश्चरण से ही मोक्ष होती है।

न वा पशूना भुवि यज्ञहिसा, क्रूरा विगर्ह्या तव शासनेषु।
त्वत्त परो नास्तिदयामयोहि, धर्मोपि तेवीर दयापरोऽत्र।३९

अर्थ—हे प्रभो वीरनाथ भगवान् ! आपके शासन मे अत्यन्त क्रूर और अत्यन्त निंदनीय ऐसी यज्ञ मे होने वाली

पशुओ की हिंसा कभी नही बतलाई है। इसलिये हे नाथ ! आपके सिवाय अन्य कोई भी मनुष्य आपके समान दयामय नही कहलाता है।

स्त्रीणा सतीत्व तव शासनेषु, घातात्मक प्राणहर न देव ।
दीक्षाविधान परम सतीत्व,तासां मृते भर्तरि दीक्षिते वा।४०

अर्थ—हे देव ! आपके शासन मे स्त्रियो का सतीत्व धर्म प्राणो को हरण करने वाला आत्म हत्या रूप नही बतलाया है। जैसे पति के साथ-साथ स्त्री अग्नि प्रवेश करे। यदि स्त्रियो का पति मर जाय व दीक्षा ले लेवे तो फिर उन स्त्रियो को दीक्षा ही ले लेनी चाहिये, यही उनका परम सतीत्व है। यही आपके शासन मे बतलाया है।

बलिप्रदानं लघुदेवतानां, भवेत्पशूना भुवनेऽतिनिंद्य ।
न चास्ति धर्मस्तव शासनेहि, हिंसाकरं दुःखकर सुवीर ।४१

अर्थ—हे वीरनाथ भगवान् ! चंडी, मुण्डी आदि छोटे-छोटे देवताओ को तीनो लोकों में अनंत निद्य हिंसा करने वाला और तीव्र दुःख देने वाला पशुओ का बलिदान आपके शासन में कभी धर्म रूप नही बतलाया है।

सुराप्रदानं ह्यतिनिन्द्यरूपं, कृत्यं न योग्यं लघुदेवतानाम् ।
नापि द्विजाना तव शासने च, प्रणोदितं वीर पवित्रधर्मे ।४२

अर्थ—हे वीरनाथ भगवान् ! आपके शासन में न तो चंडी मुण्डी आदि छोटे-छोटे देवताओं को अत्यन्त निद्य और घृणित ऐसा मद्य-सेवन बतलाया है और न ब्राह्मण, क्षत्रिय,

इसीलिये आपका यह धर्म अत्यन्त पवित्र माना जाता है ।

धर्मस्य कार्ये च शुभे प्रसगे,हिसान मान्या तव शासनेऽस्ति ।
जीवस्य बाधा न दयामयेपु, हे वीर धर्मेषु सुखाकरेषु ।४३

अर्थ—हे वीरनाथ ! आपके शासन मे किसी भी धर्म कार्य के समय अथवा किसी भी शुभ कार्य मे हिसा करने का विधान नही वतलाया है । सो ठीक ही है, क्योकि समस्त जीवो को सुख देने वाले और दयामय धर्म मे जीवो को किसी प्रकार की बाधा कभी हो ही नही सकती ।

अपक्वपक्वस्य पलस्य नास्ति,शुष्कस्यवा भक्षणमत्र मान्य ।
जीवाभिघातादघकारणत्वाद्दयामये वीर सुशासने ते ॥४४

अर्थ—हे वीरनाथ, भगवान् ! आपके दयामय शासन मे कच्चे पक्के वा सूखे हुए मास का भक्षण करना कभी भी योग्य नही माना गया है । क्योकि सब तरह मास-भक्षण मे अनन्त जीवो का घात होता है और इसीलिये उससे महा पाप उत्पन्न होता है ।

देवस्य धर्मस्य च कारणेन, मासो न भक्ष्यस्तव शासनेऽत्र ।
दयामयो वीर यतोहि धर्म ,जीवाभिघातो न कदापियोग्य ४५

अर्थ—हे प्रभो वीरनाथ भगवान् ! आपके दयायय शासन मे किसो भी देव वा धर्म के कारण भी मास-भक्षण करना योग्य नही बतलाया है सो ठीक ही है, क्योकि धर्म का स्वरूप दयामय है । फिर, उसमें कभी भी जीवो का घात करना योग्य नही हो सकता ।

निरागसानां न मृगादिकानामांखेटक क्वापि कदापि योग्यं।
प्राणाभिघातादिहशासनेते,गीतोह्यहिसापरमोहि धर्मः।४६

अर्थ—हे वीरनाथ भगवान् ! आपके पवित्र शासन मे निरपराध हिरण आदि जीवो का शिकार खेलना कभी किसी क्षेत्र में भी योग्य नही बतलाया है। क्योकि उसमे जीवो की हिसा अवश्य होती है। हे नाथ ! इसीलिये आपका यह धर्म "अहिंसा परमो धर्मः" अर्थात् अहिंसा ही परम धर्म है, इस प्रकार ससार भर मे प्रसिद्ध है।

वेश्यापरस्त्र्यादिकसेवनं हि,न शासने वीर तवास्ति धर्मः।
द्यूतोतिनिद्यश्च यतो न धर्म,परंपवित्रोभुवि वीरधर्मः।४७

अर्थ—हे भगवान् वीरनाथ ! आपके शासन में वेश्या-सेवन वा पर स्त्री-सेवन भी धर्म नही माना है। और न अत्यन्त निंदनीय ऐसा जूआ खेलना धर्म माना है। इसका भी कारण यह है कि इस ससार में आपका ही धर्म पवित्र है और इसीलिये इन सब का निषेध है।

धर्मो न वाऽगलितनीरपानं, भुक्तिर्निशायामघपचसेवा।
वीर प्रभोस्तेस्ति च शासनेवा,दयाकरे शान्तिकरे पवित्रे।४८

अर्थ—हे महावीर स्वामिन् ! आपका शासन दया करने वाला और अत्यन्त पवित्र है। इसीलिए आपके धर्म मे बिना छना पानी पीना नही बतलाया है, न रात्रि-भोजन बतलाया है और न पाच प्रकार के पापो का सेवन करना बतलाया है।

इज्या महेज्या नवदेवताना, चैत्यप्रतिष्ठा स्नपनं जिनस्य।
वात्सल्यभावंनिजधार्मिकेषु,वीरेणचोक्तो व्यवहारधर्म.।४९

अर्थ—अर्हंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु, जिन-वाणी, जिन धर्म, जिनालय और जिन-प्रतिमा, ये नौ देवता कहलाते है। इन नौ देवताओ की पूजा व महापूजा करना, जिन प्रतिमा की प्रतिष्ठा करना, भगवान् जिनेन्द्र देव का अभिषेक करना और अपने धर्मात्मा भाइयो मे वात्सल्य भाव धारण करना आदि सबको भगवान् वीरनाथ ने व्यवहार धर्म बतलाया है।

वीरस्य धर्मस्य कथास्ति लोके, पर पवित्रा निरवद्यकस्य।
ता वक्तुमोशोनसुराधियोपि,धन्यस्ततस्त्वजिनवीरनाथ ।५०

अर्थ—हे जिन! हे वीरनाथ भगवान्! आपका धर्म सदा पाप रहित है, इसीलिए उसकी कथा भी इस ससार मे परम पवित्र मानी जाती है। हे प्रभो! ऐसी उस आपके धर्म की कथा को कहने के लिये इन्द्र भी समर्थ नही है। हे वीरनाथ! इसीलिये आप इस समस्त ससार मे धन्य महाधन्य माने जाते हैं।

धीरोसि वीरोस्यतिवीरकोऽसि. योवीरनाथोभुविवर्द्धमान,:।
पूज्योमहावीरइतिप्रसिद्धस्त्व, सन्मतीशस्त्वमसिप्रवुद्ध ।५१

अर्थ—हे भगवन् वीरनाथ स्वामिन्! आप धीर वीर हैं, पूज्य है, अनन्त ज्ञानवान् हैं, वीरनाथ हैं, वर्द्धमान हैं, महावीर है, सन्मति है। हे स्वामिन्! आप अनन्त नामो से प्रसिद्ध हैं।

आदर्श भावना

(रचयिता—ब्र० सुन्दरलाल जैन)

(दोहा)

ब्रह्म ज्ञान को प्रणमि कर, सुमत खड्ग ले हाथ ।
भवछदन हित भावना, भावो भवि दिन रात ।।

(छद हरिगीतिका)

है जिन कथन का ये मथन, जिनवर धरम की बाट ले ।
नर भव मिले का सार ये, बधन करम का काट ले ।। १

घटती हुई घटना हमेशा, सामने दिखलात है ।
फिर भी न हो होशियार तो, इस भूल की क्या बात है ।। २

आया यहाँ ऐ आत्मन, जिस मनसुआ को बाध के ।
जुट जा उसी मे गति बदल ले, कार्य निज को साध ले ।। ३

अब भी अगर गाफिल रहा, तो निशि अधेरी आयेगी ।
पथ भ्रष्ट हो भ्रमता फिरे, ना राह घर की पायेगी ।। ४

जीवन संगाती मित्र से ना, फेर मिलना होयेगा ।
भव बन विकट मे हो हताश, निराश हुआ रोयेगा ।। ५

ले खोल आखे शीघ्रता से, चेत क्या कर रहा है ।
क्यो मोह मद के नशे मे, बन बावला फिर रहा है ।। ६

तृप्ती करन के हेत फिरता, करत दिन को रात है ।
तू सोचता सो होय ना, आशा असम्भव बात है ।। ७

होती तो अबतक होय जाती, आश पूरण बावरे ।
एक ना दो चार ना, बीते अनन्ते काल रे ।। ८

पूरब भवो मे आत्मन, क्या क्या न तूने पा लिया ।

फिर भी हमेशा तरसता ही, रहा ऐ मोरे जिया ।। ९
थोडा सा इतना और हो, ये लालसा करता रहा ।
सो आस पूरी हो न पाई चिरकाल से रटता रहा ।। १०
अब आनकर मौका मिला, तर समुद्र तट पर आय जा ।
दे तोड बधन तज झिझक मन का मनोरथ पाय जा ।। ११
आनन्द उदधि मे मार गोता हृदय के पट खोल ले ।
आतम अनुपम रतन को ला, ढूंढ करके तोल ले ।। १२
यदि आ किनारे पर न चेता, लौट वापिस जायगा ।
नर तन अमोलक रतन को, ले डालकर पछितायगा ।। १३
ले जीत बाजी मिलो को, कर से न जाने दीजिये ।
ऐसा न मौका फेर पावे, जान साची लीजिये ।। १४
काल की चक्की हमेशा, चल रही तैयार हो ।
जावे अचानक पिस मनसुआ, किया सब बेकार हो ।। १५
तू सोचता कुछ और है, यहा हो रहा कुछ और है ।
है सूझ पक्की काल की, तेरी वृथा की दौड है ।। १६
इसलिये मन के मथन को, दे छोडकर तत्काल ही ।
मतकर भरोसा काल का बन काल का तू काल ही ।।१७
अय लाल सुन्दर फिरत क्या, तू देखता चहु ओर है ।
जहां काल की न दाल गलती, ढूढ ले वह ठौर है ।। १८
कर यतन जो तुम से बने, जितना जलद हो दीजिये ।
आदर्श बनना चाहता तो, आशा को तज दीजिये ।।१९

(दोहा)

सोचत सोचत ही गये, बीत अनन्ते काल ।
इस भव समुद्र अथाह को, बाध सका ना पाल ।।

श्रीमत वादिराज मुनिवरसो, कह्यो कुष्ठि भूपति जिह वार ।
श्रावक सेठ कह्यो तिह अवसर, मेरे गुरु कंचन तन धार ॥
तबहि एकीभाव रच्यो गुरु, तन सुवरण दुति अपार ।
सो गुरुदेव० ॥ ६

श्रीमत कुमुदचन्द्र मुनिवरसो, वाद पर्यो जह सभा मझार ।
तवहि की कल्याण धाम थुति, श्रीगुरु रचना रची अपार ॥
तब प्रतिमा श्री पार्श्वनाथ की, प्रगट भई त्रिभुवन जयकार ।
सो गुरुदेव० ॥ ७

श्रीमत अभयचन्द्र गुरु सो, जब दिल्लीपति इमि कही पुकार ।
कै तुम मोहि दिखावहु अतिशय, कै पकरो मेरो मत सार ॥
तब गुरु प्रगट अलौकिक अतिशय,तुरत हर्यो ताको मद सार ।
सो गुरुदेव० ॥८

दोहा—विघ्न हरण मंगल करण वांछित फल दातार ।
वृन्दावन अष्टक रच्यो, करो कंठ सुखकार ॥

॥ श्री जिनाय नम ॥

१००८ देवाधिदेव महावीर की स्तुति

सकल श्रेष्ठ गुण राशि विराजित जिसमे फैला सुयश महान्
उस यश से प्रभु आप सुशोभित महावीर जिनपति भगवान ।
ज्यो नक्षत्र वृंद से वेष्टित कुद पुष्प सम अति अवदात ।
शशि मडल नभ मे शोभित हो त्यो भामडल से आप उदात ॥

अर्थ—हे वीर भगवान् ! आप अपने महान गुणो से उत्पन्न दीप्तमति निर्मल कीर्ति से प्रकाश मान हुये जैसे कि आकाश मे तारागणो के बीच चन्द्रमा अपनी कुन्द पुष्प के समान धवल कीर्ति वाली चान्दनी से शोभित होता है ।

प्रभो ! आपका शासन वैभव गुण अनुशासित महाविशाल ।
सदा रहा जयवंत आज भी, जबकि चल रहा खल विकराल ।
दोष चाबुको से बचने मे जो होते हैं पूर्ण समर्थ ।
स्तुति करते वे, ज्ञान ज्योति से अन्य मतो को करके व्यर्थ ॥

अर्थ—हे जिनदेव ! इस कलिकाल मे भी आपके श्रद्धा, ज्ञान, चरित्र गुनमय अनुशासन (आज्ञा के पालन) मे तत्पर भव्य जीवो को ससार से छुडाने वाला आपका शासन वैभव (धार्मिक विधान रूपी वैभव) जयवन्त है । आपके इस धर्म शासन की मिथ्यात्व, राग द्वेप आदि कुशाघात चाबुको की मार को दूर करने वाले यानि आध्यात्मिक दोषो से रहित तथा लौकिक देवो के प्रभावको क्षीण करने वाले गणधर आदि ऋषिगण आपके शासन की स्तुति (प्रशसा) करते हैं ।

स्यादवाद सिद्धान्त आपका इष्ट दृष्ट अविरोध स्वरूप।
इसीलिये निर्दोष यही है और सभी है वाद विरूप।
अन्य वाद स्याद्वाद नही है दृष्ट इष्ट से उनका घात।
हे मुनिनाथ! सभी वे दूषित अनपेक्षित शिवहर एकान्त॥

अर्थ—हे मुनीश्वर! आपका 'स्यात्' पदयुक्त स्याद्वादमत (विभिन्न दृष्टिकोणो से वस्तु के समस्त धर्मों का यथार्थ प्रतिपादन करने वाला अनेकान्तवाद) प्रत्यक्ष, वा अनुमान आगम आदि प्रमाणो के अविरुद्ध (अनुकूल) होने से निर्दोष है। इसके सिवाय अन्य एकान्तवाद वास्तव मे वाद वस्तुत्व का प्रतिपादन या प्रतिपादक) नही है क्योकि वह स्याद्वाद रूप नही है तथा प्रत्यक्ष और परोक्ष प्रमाण से बाधित है।

आप सुरासुर पूजित हो प्रभु! केवल लब्धि रमा के कन्त।
नास्तिक और परिग्रह प्रेमी नही चाहे तुमको भगवन्त।
तीन लोक के मगलकारी हितकारी हो आप जिनेन्द्र।
आवृत रहित ज्योति के धारी उज्ज्वल धामा श्री वीरेन्द्र॥

अर्थ—हे वीर भगवान्! आप सुर-असुर आदि भव्य प्राणियो के द्वारा पूज्य है। मिथ्यादृष्टि जीव अपने दुराशय (मिथ्यात्व दुर्भावना) से आपको प्रणाम नही करते। आप त्रिलोकवर्ती जीवो के हितकारी है। तथा निरावरण केवलज्ञान, ज्योति से प्रकाशवान मोक्षथल को प्राप्त कर चुके है। हमारे पास वह जीभ नही हम कैसे गुण वर्णन करे।

उस गुण भूषण के धारी हो जो सभ्यो को रुचता है।
अन्तर्वाह्य विभव लक्ष्मीयुत, विज्ञ जनो का जचता है।
निज प्रकाश जिन ज्योतिमग्न हो नही किसी के हो आधीन।
स्वीय काति से दीप चन्द्र भी हार मानता बनकर दीन॥

अर्थ—हे वीर प्रभो! आप समवशरण सभा मे विद्यमान सभी भव्य सभ्यो को सुरुचिकर हैं। आप अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान यथाख्यात

चरित्र, अनन्तवीर्य आदि गुणों से विभूषित है तथा आठ प्रतिहार्य आदि लक्ष्मी से रमणीय है। आप अपनी आध्यात्मिक तथा शारीरिक कान्ति द्वारा अपनी कान्ति से निर्भर, लौकिक जनता को रुचिकर हिरण के लाञ्छनवाले चन्द्रमा को जीतने वाले है।

सब लक्ष्मीयुत वीर आप ही माया मद का कुछ नही लेश।
यम दम नियम त्याग, जप तप का दिया सदा सुन्दर उपदेश।
जन मुमुक्ष मन वाञ्छित-दाता लक्ष्मीप्रद निर्भय अशेष।
शिवकारी सब दुःख हारी तुमसे रहे कर्म नहि शेष॥

अर्थ—हे जिनवीर! आप मुमुक्षु भव्यजनों की कामना पूर्ण करनेवाले है और मद (अभिमान) माया (छलकपट) आदि दोषों से रहित है। आपका समस्त पदार्थों का ज्ञान सबके लिए कल्याणकारी है। आपने आध्यात्मिक लक्ष्मीवाले निष्कपट यम (अहिंसादिक व्रत) और इन्द्रियों का दमन करने वाले सम्यक् चारित्र का उपदेश दिया है।
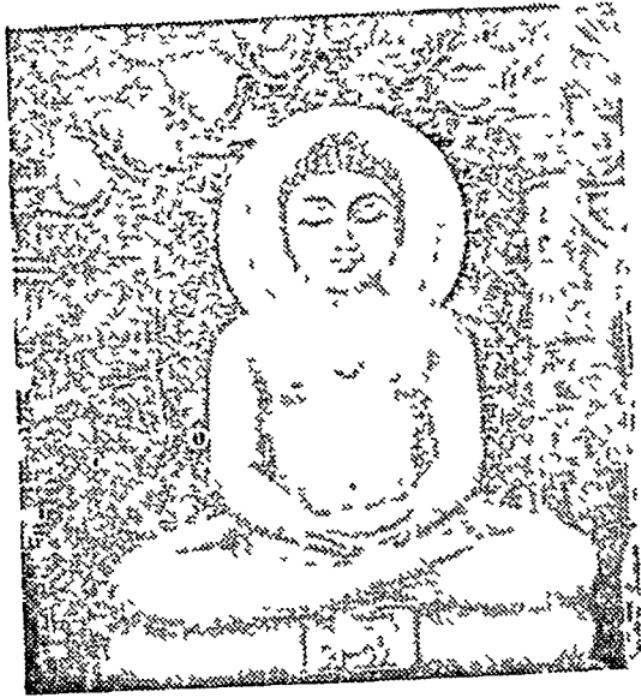
ज्यों गिरि भेदन करने वाले मद जल निर्झर युक्त कपोल।
भव्य सुलक्षणयुत गजेन्द्र का गमन होय स्वाधीन अमोल।
त्यों तुम शान्ति सुरक्षण दाता अप्रमत्त उन के आगार।
वीर! आपका ज्ञान जगत मे अति विशिष्ट शिव मंगल कार॥

यद्यपि परमत भी गुण सपतियुत जिनमे मधुर वचन-विन्यास ।
जनता के मन को भी मोहे तद्दपि विकल एकान्त प्रयास ।
नय विभाग अवतस कलायुत प्रभो ! आपका मत अवदान ।
है समतभद्रान्वित यह ही सब दोपो से रहित उदात ॥

अर्थ—हे जिनेन्द्र देव ! अन्य एकान्तवादी मत प्रचारको की वचनकला (वोलने का ढग) वाहर मे (कानो के लिये) प्रिय मधुर प्रतीत होती है परन्तु वे वचन वास्तव मे आध्यात्मिक हितकारी गुणो से विकल (रहित या अधूरे) है। यानी उनके द्वारा आत्मा के समस्त गुणो का अभ्युदय नही होता। परन्तु आपके वचन समस्त नयो से (स्याद्वाद से) एव भक्ति (श्रद्धा) से सुशोभित (अलकृत) हैं। अत आपका शासन (मत्त) सव तरफ से पूर्ण और भद्र कल्याणकारी है। आपके स्याद्वाद द्वारा ज्ञान परिष्कृत होता है। पारस्परिक विचार सघर्ष दूर होता है और आपके द्वारा निरूपित सिद्धान्त द्वारा आतमश्रद्धा एव देव, आगम, गुरू की भक्ति जाग्रत होती ह। जिससे सत् श्रद्धा ज्ञान चरित्र द्वारा आत्मा का पूर्ण उत्थान होता है।

इस प्रकार महान् प्रभावक, महान् तार्किक विद्वान सदा, शास्त्रार्थ विजेता, आद्य स्तुतिकार भविष्यवक्ता तीर्थकर श्री समन्तभद्र आचार्य रचित श्री भगवान महावीर की स्तुति ।

पूज्य श्री उमा स्वामी जी महाराज
रचियता तत्वार्थ सूत्र तथा श्रावकाचार
(श्री दि० जैन नया मन्दिर जी से फोटो प्राप्त)

भगवान महावीर

अर्थ जो इस अपार ससारके दु खोसे निकालकर जीवोको कभी नाश न होनेवाले अक्षय अनन्त मोक्षसुख मे धारण कर देता है उसी को यथार्थ धर्म समझना चाहिये। भावार्थ—भगवान् जिनेन्द्रदेवका कहा हुआ दयामय धर्म ही इन ससारी जीवोको जन्ममरणरूपी दु:खसे निकालकर मोक्षसुखमे पहुँचा देता है इसलिये कहना चाहिये कि इस ससारमे दया ही धर्म है ॥३॥

अर्थ—सम्यग्दर्शन सम्यग्यज्ञान और सम्यक्चारित्रकी एकता ही मोक्षका मार्ग है। धर्म कार्योमे अन्यन्त निपुण ऐसे गणधरदेव इस रत्नत्रयको ही मोक्षमार्ग बतलाते है तथा यही रत्नत्रय एक देश रूप गृहस्थोका धम कहलाता है ॥४॥

अथ—भगवान् तीर्थंकर परमदेवको देव मानना, दयामय धर्मको धम मानना और निर्ग्रंथ गुरु को गुरु मानना सम्यग्दर्शन है। तथा देव शास्त्र गुरुका यह श्रद्धान निर्दोष होना चाहिये तभी सम्यग्दर्शन होता है। ऐसा गणधर देवोने कहा है ॥५॥

अर्थ—अदेव वा कुदेवको देव मानना, अधर्मको धम मानना और कुगुरुको गुरु मानना मिथ्यादशन है। भावार्थ—रागद्वेष को धारण करनेवाले ब्रह्मा विष्णु महादेव आदिको देव मानना मिथ्यादशन है। हिसा और पापमय अधमको धर्म मानना मिथ्यात्व है तथा विषयोकी लालसा रखनेवाले आरम्भ परिग्रह सहित कुगुरुओको गुरु मानना मिथ्यात्व है। इसी प्रकार यथार्थ देव शास्त्र गुरुमे देव शास्त्र गुरुकी श्रद्धा न करना भी मिथ्यात्व है ॥६॥

अथ—भूख, प्यास भय, द्वेप, राग, मोह, बुढापा, रोग, चिन्ता, मरण, मद, स्वेद वा पसीना, रति, खेद, आश्चर्य, विपाद, जन्म और निद्रा ये अठारह दोष कहलाते है। ये सब दोप बडी कठिनतासे छूटते है। जिन भगवान् के इन अठारह

दोपोमे से कोई भी दोप नही है वे ही तीनो लोकोके स्वामी देवाधिदेव समझे जाते है ॥७॥ ॥८॥

अर्थ—जो इन ऊपर लिखे अठारह दोपोसे रहित है वही विष्णु है, वही ब्रह्मा है, वही देव है वही महादेव है वही बुद्ध है वही समस्त देवोसे तथा भवनवासी व्यंतर ज्योतिषी देवोसे पूज्य है, वही निसंग है, वही सर्वज्ञ है वही सबका हित करने वाला है, वही सर्वोत्कृष्ट है, वही परमेश्वर है वही उत्कृष्ट ज्ञानी, वही तीनो लोका का स्वामी है, वही उपदेशक है और वही देवाधिदेव कहलता है ॥९॥ ॥१०॥

अर्थ—जो आत्माका स्वभाव इस अपार संसार रूपी महा सागर मे पडे हुए जीवो को निकालकर ऊपर मोक्षमे धारण कर देता है वही धर्म कहलाता है तथा वही धर्म साक्षात् मोक्षके सुख देनेवाला है। भावार्थ—संसारका जन्ममरण रूप दुःख एक धर्मके धारण करनेसे ही नष्ट होता है तथा उसीसे मोक्षकी प्राप्ति होती है। इसीलिये भव्य जीवोको इसे *उत्तम धर्मका सेवन अवश्य करते रहना चाहिये ॥११॥

अर्थ—पृथ्वी खेत बाग आदिको क्षेत्र कहते हैं, महल मकान आदिको वास्तु कहते हैं, सोना चांदी जवाहरात आदिको धन कहते हैं, गेहूं जौ चावल आदिको धान्य कहते हैं, स्त्री दासी दास द्विपद कहलाते हैं, घोड़ा गाय भैंस आदि चतुष्पद सिंहासन कुर्सी पाटा आदि आसन हैं पलंग खाट बिछौना आदि शयन कहलाते हैं वस्त्रोंको कुप्य कहते हैं और बर्तनोंका भांड कहते हैं। ये दस प्रकार के बाह्य परिग्रह कहलाते हैं ॥१६॥

अर्थ—मिथ्यात्व, वेद, राग, द्वेष, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, क्रोध, मान, माया, लोभ ये चौदह अन्तरंग परिग्रह कहलाते हैं ॥१७॥

और पापकी प्रवृत्ति करनेवाले हिताहितके विवेकसे रहित मिथ्या साधु कभी गुरु नही कहला सकते ॥१८॥

अर्थ–यदि स्त्री पुत्र शस्त्र आदिको रखने वाले रागी द्वेषी देव ही देव माने जायेंगे ब्रह्मचर्यको पालन न करने वाले साधु ही गुरु माने जायेगे और दया रहित धर्म माना जायेगा तो फिर कहना चाहिये कि यह सबसे बडे दुःखकी बात है। हा, फिर तो इस जगतको नष्ट हुआ ही समझो। भावार्थ—वीतराग सर्वज्ञ और हितोपदेशी ही देव होते है, वस्त्रालकार, आयुध, वाहन आदि सामग्रीको धारण करने वाले कभी देव नही हो सकते। चौवीस प्रकारके परिग्रहसे रहित वीतराग (दिगम्बर) साधु ही गुरु होते है विषय कषायोमे लीन आरम्भ परिग्रहको धारण करने वाले पाखडी साधु कभी गुरु नही हो सकते। इसी प्रकार पापक्रियासे रहित दयाधर्म ही श्री जिनेन्द्र-देवका कहा हुआ धर्म है। पशुवध आदि पापक्रियाओका उपदेश देने वाला धर्म कभी यथार्थ धर्म नही हो सकता ॥१९॥

अर्थ—जो पुरुष ऊपर कहे हुए देव शास्त्र गुरुमे दृढ श्रद्धान रखता है उसको सम्यग्दृष्टी समझना चाहिये। जो पुरुष इन यथार्थ देव शास्त्र गुरुमे सशय रखता है, उसे मिथ्यादृष्टि समझना चाहिए ॥२०॥

अर्थ—जीव अजीव आस्रव वध सवर निर्जरा और मोक्ष इन सातो तत्वो का यथार्थ श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। अथवा निश्चय नयसे अपने आत्माके शुद्ध स्वरूपमे लीन हो सम्यग्दर्शन है। यह समग्यदर्शन पच्चीस दोषोसे रहित होता है ॥२१॥

भावार्थ–व्यवहार सम्यग्दर्शन, निश्चय सम्यग्दर्शनका साधक है। निश्चय सम्यग्दर्शन तो शुद्ध है ही। किन्तु व्यवहार सम्यग्दर्शनको भी पच्चीस दोषोसे रहित ही पालन करना चाहिये।

अर्थ—जो भव्य जीव पचेन्द्रिय है पूर्ण पर्याप्तक है और जिसको काल लब्धि आदि लब्धिया प्राप्त हो चुकी है ऐसे भव्य जीवोको ही सम्यग्दर्शन उत्पन्न होता है तथा निसर्ग और

अर्थ—यदि जीव निकट भव्य हो, कर्मोका सत्त्व उदय आदि अत्यन्त कम हो, वह सैनी हो कर्मोके कम होनेके परिणाम अत्यन्त शुद्ध हो और उपदेश आदि वाह्य कारण सामग्री मिल जाय तो सम्यग्दर्शन होता है। भावार्थ—ये सब सम्यग्दर्शनके कारण है ॥२३॥

अर्थ—उस सम्यग्दर्शनके तीन भेद है। औपशमिक सम्यग्दर्शन क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन और क्षायिक सम्यग्दर्शन। इनके सिवाय आज्ञा सम्यक्त्व आदि दश भेद और है ॥२४॥

अर्थ—क्षायिक सम्यग्दर्शन सादि और अनन्त है। इसलिए वह चौथे गुणस्थानसे लेकर समस्त गुणस्थानोमे तक रहता है, तथा मोक्षमे भी रहता है। क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन चौथे गुणस्थानसे लेकर सातवे गुणस्थान तक रहता है। सब प्रकारके सम्यग्दर्शन मोक्षके कारण अवश्य है ॥२५॥

अर्थ—प्रथम औपशमिक सम्यग्दर्शन चौथे गुणस्थानसे लेकर उपशात कषाय नाम के ग्यारहवे गुणस्थान तक रहता है यह सम्यग्दर्शन भी इच्छानुसार समस्त पदार्थोको देनेवाला है।२६।

अर्थ—ये तीनो प्रकारके सम्यग्दर्शन साध्य साधनके भेदसे दो प्रकार है। साक्षात् मोक्ष प्रदान करनेवाला क्षायिक सम्यग-

---

होकरश्रद्धान होना सक्षिप्त सम्यक्त्व है ॥६॥ द्वादशाग वाणीको सुनकर श्रद्धान होना विस्तार सम्यक्त्व है ॥७॥ किसी पदार्थके देखने वा अनुभव करने आदिसे पदार्थोका श्रद्धान होना अर्थ सम्यक्त्व है ॥८॥ द्वादशाग और अग बाह्य आदि समस्त श्रुतज्ञानका पूर्ण अनुभव कर समस्त पदार्थोका पूर्ण श्रद्धान करना गाढ सम्यक्त्व है ॥९॥ केवल ज्ञानके द्वारा समस्त पदार्थोको प्रत्यक्ष जानकर परम गाढ श्रद्धान करना परमावगाढ सम्यक्त्व है।

अर्थ—इन सम्यग्दर्शनके आठ अंग हैं। उन सब अंगोंसे सुशोभित सम्यग्दर्शन ही संसारके नाश करनेमें समर्थ होता है। जिस प्रकार अक्षरहीन मन्त्र अपना काम नही कर सकता उसी प्रकार अंगहीन सम्यग्दर्शन पूर्ण रीतिसे किसी कार्यको सिद्ध नही कर सकता। भावार्थ—निःशंकित निःकांक्षित निर्विचिकित्सा अमूढदृष्टि उपगूहन, स्थितिकरण वात्सल्य और प्रभावना ये सम्यग्दर्शनके आठ अंग हैं सम्यग्दृष्टीको इन आठो अंगोका पालन करना आवश्यक है ॥३४॥

अर्थ—वीतराग सर्वज्ञदेव भगवान अर्हंत देवने जीव अजीव आदि समस्त पदार्थोंका स्वरूप अनेक धर्मात्मक बतलाया है। वह वही है उसी प्रकार है अन्य नही है, अन्यथा भी नही है। इस प्रकार तत्त्वोंका दृढ श्रद्धान करनेवाला मनुष्य निःशंकित अंगको धारण करनेवाला गिना जाता है। भावार्थ—इन्द्रिय जनित ज्ञानसे पदार्थोंके समस्त धर्म वा समस्त पर्यायोका ज्ञान नही होता। वीतराग सर्वज्ञदेवके केवलज्ञानमे ही मूर्त अमूर्त समस्त पदार्थ और उनके समस्त धर्म वा पर्यायें प्रत्यक्ष ज्ञान गोचर होती है। सर्वज्ञका ज्ञान अतीन्द्रिय और अनन्त है। इसलिए उनके द्वारा पदार्थो का जो स्वरूप कहा गया है, वह प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनो प्रमाणोसे सर्वथा अबाधित सत्य और यथार्थ है। इसलिये प्रत्येक धर्मात्मा पुरुषको सर्वज्ञके वचनो पर दृढ श्रद्धान रखकर अपने आत्माका हित कर लेना चाहिये। व्यर्थकी कुतर्कों मे समय बिताना अपने आत्माका अहित करना है। क्योकि प्रत्येक पदाथमे अनन्त धर्म है सबकी परीक्षा हमसे नही हो सकती और न इन्द्रिय जन्य किसी भी ज्ञान से हो सकती है ॥३५॥

अर्थ—भगवान जिनेन्द्रदेव ही देव है, भगवान् जिनेन्द्रदेवके कहे हुए तत्व ही यथार्थ तत्व है। इस प्रकार जो दृढ श्रद्धान

करता है, उसे नि शकित अगके धारण करनेवालोंमे मुख्य समझना चाहिये ।

अर्थ—अजन नामका चोर यद्यपि इन्द्रियरूपी राक्षसोके आधीन था तथापि केवल निःशकित अगको धारण करनेसे उसको आकाशगामिनी विद्या क्षणमात्रमे प्राप्त हो गई थी। भावार्थ—इन्द्रियोके विषयोके आधीन और व्यसनोके सेवन करनेवाले अजन चोरको केवल निःशकित अगके पालन करनेसे आकाश गामनी विद्या सिद्ध हो गई थी। इसलिये श्रावकोको इस अगका मन वचन कायसे सदा पालन करते रहना चाहिये ॥३७॥

अर्थ—जो पुरुष घोर तपश्चरण करता हुआ तथा उत्कृष्ट दान देता हुआ भी उसके निमित्त से स्वर्गादिकोके सुखोकी मन, वचन काय किसी से भी इच्छा नही करता उसको नि काक्षित अगको धारण करनेवालो मे मुख्य समझना चाहिये ॥३८॥

अर्थ—ये इन्द्रियोके विषयोसे उत्पन्न हुए सुख क्षण भर बाद ही नष्ट हो जाते है। जो मनुष्य घोर तपश्चरण करता हुआ तथा उत्कृष्ट दान देता हुआ भी इन इन्द्रिय जन्य सुखोकी अभिलाषा करता है उसको बुद्धिमान लोग आकाक्षा कहते है। ऐसी आकाक्षा श्रावकोको कभी नही करनी चाहिये ॥३९॥

अर्थ—किसी एक सेठकी पुत्री अनन्तमताके पिताने कौतुकमात्र कहनेसे चौथे ब्रह्मचर्य व्रत को पालन किया था और उससे फिर किसी प्रकारकी इच्छा नही रक्खी थी इसलिए वह उस निःकाक्षित अगके प्रभावस तपश्चरण कर बारहवे स्वर्ग मे उत्पन्न हुई थी ॥४०॥

अर्थ—यह शरीर स्वभावसे तो अपवित्र है परन्तु रत्नत्रयसे पवित्र है। रत्नत्रयसे पवित्र ऐसे मुनियोके शरीरको देखकर उससे घृणा नही करना किन्तु उनके रत्नत्रयरूप गुणोमे प्रेम करना तीसरा निर्विचिकित्सा अग कहलाता है ॥४१॥

अर्थ—यद्यपि यह जिनशासन सर्वथा अनिद्य है तथापि मुनि लोग जो खडे होकर आहार लेते है नग्न रहते है और स्थान आचमन नही करते इसीलिये कुछ नासमझ मिथ्यादृष्टी लोग इस जिनशासनकी निंदा करते है। यह उनकी भूल है। यह शरीर रुधिर माँस हड्डी मल मूत्र आदि अनेक घृणित और अपवित्र वस्तुओ का घर है इसलिए समुद्रके पानीसे भी स्नान करनेपर शुद्ध नही हो सकता। इसकी शुद्धता केवल रत्नत्रय वा ब्रह्मचर्य आदि आत्मगुणोसे होती है। स्नान और आचमन करनेसे अनेक जलकायिक जीवोकी हिसा होती है वह हिसा न हो इसीलिये मुनिराज स्नान आचमन नही करते। वे मुनिराज शरीरको पर समझते है आत्मासे भिन्न समझते है तथा उनके आत्मामे कामका कोई विकार होता नही। वे बालकके समान निर्विकार रहते है इसीलिए वे नग्न रहते है। जबतक यह शरीर रत्नत्रय धारण करनेमे समर्थ रहता है तभी तक मुनि-राज इस आहार देते है जब यह शरीर रत्नत्रयके पालन करने मे असमर्थ हो जाता है तभी इसे आहार देना छोडकर समा-धिमरण धारण करलेते है इसीसिये वे खडे होकर आहार लेते है। इस प्रकार मुनियोके समस्त कर्तव्य आत्माकी पवित्रताके लिये है और इसीलिए यह जैनशासन परम पवित्र समझा जाता है। फिर भी जो लोग धर्मके यथार्थ स्वरूपको न समझकर इस जैनशासनकी निन्दा करते है उन्हे नासमझ ही समझना चाहिए ॥४२॥

अर्थ— तीव्र मिथ्यात्व कर्मके उदयसे जो लोग मुनियोके स्वरूपको वा शरीर और रत्नत्रयके स्वरूपको नही जानते है तथा जिनका हृदय स्वभावसे ही कुटिल है ऐसे कुछ दुष्ट पुरुप व्यर्थ ही मुनियोकी निदा करते है। उन्हे नीचे लिखे अनुसार वस्तुका यथार्थ स्वरूप समझ लेना चाहिये।

अर्थ—वे मुनिराज शुद्ध आत्माके ध्यानमें सदा लीन रहते है, मन, वचन, कायसे ब्रह्मचर्यका पालन करते है और व्रत तथा मत्रोसे सदा पवित्र रहते है ऐसे सदा पवित्र और पूज्य मुनियोको इस ससारमे स्नान करनेकी कोई आवश्यकता नही है। भावार्थ–स्नानके सात भेद है मत्रस्नान, भौमस्नान, अग्निस्नान, वायुस्नान, दिव्यस्नान, जलस्नान और मानस्नान। गृहस्थ लोग राग-द्वेप, काम, कषाय आदि विकारोसे सदैव मलिन रहते है इसलिए गृहस्थोकी शुद्धि विना जलस्नानके नही हो सकती। परन्तु मुनिराज इन विकारोसे सर्वथा अलग रहते है। इसलिए उनके शरीरकी शुद्धि व्रतस्नान वा मत्रस्नानसे ही मानी जाती है। इसके सिवाय उनका शरीर रत्नत्रय और ब्रह्मचर्यसे ही पवित्र है इसलिए उनको स्नान करनेकी कोई आवश्यकता नही रहती। इसीलिए वे आजन्म स्नानके त्यागी होते है ? ॥४४॥

अर्थ—मुनीश्वरोका जो अग मलमूत्रादिक से अशुद्ध हो जाता है वे उसी अगको प्रासुक जलसे मार्जन कर शुद्ध कर लेते है परन्तु जो अग मल मूत्रादिक विकारोसे अपवित्र ही नही हुआ है ऐसे पवित्र शरीरको जलस्थान की शुद्धिसे क्या लाभ हो सकता है यदि किसी सर्पने उगलीमे काटा है तो वह उगली ही काट दी जाती है उगलीमे काटने पर नाकको कोई नही काटता ॥४५॥

अर्थ—कापलिक (अघोरी) आत्रेयी रज़स्वला चाडाल भील आदि अस्पृश्य हीन जातिवाले मनुष्यो के स्पर्श हो जाने पर वा हड्डी आदि अपवित्र वस्तुओके स्पर्श हो जाने पर

मलमूत्र शौच आदि की शुद्धी गृहस्थ और मुनीराज दोनो करते है। यह व्यवहार धर्म है और उसका पालन करना दोनो का मुख्य कर्तव्य है।

मुनी लोग इन के स्पर्श मात्रसे [illegible] होकर कमण्डलुकी धारासे सर्वांग स्नान करते हैं पंचनमस्कार मन्त्रका जप करते हैं और उस दिन उपवास करते हैं। भावार्थ—मुनिराज जन्मपर्यन्त तक स्नानके त्यागी होते हैं। तथापि चाण्डाल आदि अस्पृश्य शूद्रोंके स्पर्श हो जाने पर वे कमण्डलुके जलकी धारासे दण्डवत् स्नान करते हैं पंचनमस्कार मन्त्रका जप करते हैं और उस दिन उपवास करते हैं। जो लोग स्पृश्यास्पृश्य भेद नहीं मानते या जाति भेद नहीं मानते, जैन धर्म धारण करलेने पर भंगी चमारोंके साथ भी रोटी व्यवहार करना पसंद करते हैं उनके मतमें ये सब प्रायश्चित्तके ग्रन्थ मिथ्या हो जाते हैं। जिनके स्पर्शसे स्नानके सदा त्यागी मुनियो को भी स्नान करना पड़ता है ऐसे अस्पृश्य शूद्र कभी स्पृश्य नहीं हो सकते। स्पृश्य शूद्रो के द्वारा जिनप्रतिमाका स्पर्श हो जाने पर उस प्रतिमाकी भी शुद्धि मानी है। अभिषेक आदिसे उस प्रतिमा की शुद्धि शास्त्रोंमें बतलाई है। इसलिए स्पृश्यास्पृश्य भेद जातिव्यवस्था वा वर्ण व्यवस्था माने बिना मोक्ष मार्ग कभी नहीं टिक सकता। इसलिए वर्ण व्यवस्था जैन धर्मका मुख्य अंग समझना चाहिये ॥४६॥

अर्थ—व्रतोंको धारण करनेवाली अर्जिकाएं रजस्वला होने पर एक एक रातके बाद तीन रात तक स्नान करने पर अथवा चौथे दिन स्नान करने पर शुद्ध होती हैं इसमें किसी प्रकारका संदेह नहीं है। भावार्थ—यद्यपि अर्जिकाओंके जन्म पर्यन्त तक स्नान करने का त्याग होता है तथापि रजस्वला होने पर वे चौथे दिन स्नान करके ही शुद्ध होती है। आवश्यकतानुसार वे उन चार दिनोंमें प्रतिदिन भी स्नान करती हैं। इस प्रकार आवश्यकतानुसार स्नानकी शुद्धि सब जगह मानी गई है। परन्तु जल स्नान हिंसाका कारण अवश्य है तथा मुनि और

अर्जिकाओका शरीर रत्नत्रय वा ब्रह्मचर्यसे सदा पवित्र रहता है इसलिए ही ये आजन्म उसके त्यागी होते है ॥४७॥

अर्थ—जिनके शरीरमे कामादिकके विकार विद्यमान है उन्हे नग्न कभी नही रहना चाहिए। ऐसे विकारी पुरुषोका शरीर तो वस्त्रोसे ढका रहना ही अच्छा है। परन्तु जिनके शरीरमे कोई किसी प्रकार का विकार नही है उनके शरीर को वस्त्रोसे ढकना कम प्रशसाके योग्य नही माना जाता। भावार्थ-स्त्रियोके शरीर की वनावट विकार जनक है उसे देखकर साधारण पुरुषोको भी विकार उत्पन्न हो सकता है। इसके सिवाय उनके परिणामोमे भी स्वाभाविक कुटिलता रहती है और विकारो की अधिकता रहती है। इसीलिए स्त्रियोके शरीरको सदा वस्त्रो से ढके रहनें की ही आज्ञा है परन्तु पुरुषो मे यह वात नही है। पुरुषोका शरीर निर्विकार रहता है तथा परिणामोमे सरलता रहती है। पुरुषो की युवावस्था कोई ऐसा चिन्ह नही है जो दूसरोको विकार उत्पन्न कर सके इसीलिए पुरुष पूर्ण त्यागी होनें पर नग्न रहते है और नग्न रहनें मे ही उनकी शोभा है ॥४८॥

अर्थ—न तो बैठकर भोजन करने से नरक की प्राप्ति होती है और न खडे होकर भोजन करनेसे मोक्ष की प्राप्ति होती है। परन्तु ज्ञानरूपी नेत्रोको धारण करनेवाले सयमी पुरुष खडे होकर भोजन करने की प्रतिज्ञा कर लेते है। भावार्थ—मुनीश्वर लोग यह प्रतिज्ञा कर लेते है कि जवतक इस शरीरमे खडे होनें की शक्ति है तवतक ही आहार ग्रहण करेगे अन्यथा समाधि मरण धारण कर आत्माका कल्याण करेगे इसी प्रतिज्ञा के अनुसार वे खडे होकर आहार लेते है ॥४९॥

अर्थ—दीनता का अभाव और वैराग्यकी वृद्धिके लिए ही मुनिराज केश-लोच करते है। इससे मुनिराजोका शूरवीर-पना प्रगट होता है और व्रतोकी निर्मलता प्रगट होती है।

जिनेन्द्रदेव कहलाते है। इनके स्वयं आजाने पर भी रेवतीरानी मूढताको प्राप्त नही हुई थी। भावार्थ—किसी विद्याधरने इनकी साक्षात् विभूति दिखलाई थी तथापि रेवतीरानी अपने दृढ श्रद्धानसे विचलित नही हुई थी। इस प्रकार उसने अमूढ-दृष्टि अगका पालन किया था ॥५३॥

अर्थ—धर्मके मार्गमे वा धर्मके आचरणोमे सदा लीन रहने वाले किसी भव्य जीवसे दैवयोगसे कोई दोष होजाय वा कोई अपराध वन जाय तो उससे होनेवाली निन्दाको छिपाना प्रकट नही करना उपगूहन अग कहलाता है[1] ॥५४॥

अर्थ—अपने आत्माके हितकी वृद्धि चाहने वाले भव्य जीवोको उत्तम क्षमा उत्तम मार्दव आदि आत्माके श्रेष्ठ भावो-के द्वारा धर्मकी वृद्धि करनी चाहिये। तथा अन्य साधर्मी पुरुपोके दोपोको छिपाना चाहिये ॥५५॥

१—इस अगके उपगूहन और उपवृहण ऐसे दो नाम है। धर्मात्माओके दोषोको छिपाना उपगूहन है और धर्मकी वृद्धि करना उपवृहण है। किसी अज्ञानतासे वा दैवसे किसी भव्य जीवके द्वारा जैन धर्ममे मलिनता प्रगट करनेवाला कोई अप-राध वन जाय तो सम्यग्दृष्टी पुरुष उसको प्रगट नही करते है। वे लोग जिनशासनकी महिमा ही प्रगट करते है। इसीको उपगूहन अग कहते है। यदि कोई मायाचारी अपनी स्वार्थ-सिद्धिके लिए वा किसी विपयवासनासे जिनशासनको कलङ्कित करनेवाला कोई कार्य करे वार-वार समभानेपर भी अपनी दुर्वासनाका त्याग न करे और जान वूभकर जैनधर्मको कलङ्कित करना चाहे तो उसका वह निद्य कर्म जनताके सामने प्रगट कर उसको शासनसे वहिप्कृत कर देना चाहिये। यह भी जैन-धर्मकी पवित्रता रखना है और इसीलिए उपवृहण अंग कहलाता है।

अर्थ—जो कोई पुरुष दूसरोके दोषोको वडी शीघ्रताके साथ छिपाता है तथा अपने गुणोको भी प्रगट नही करता उसे ही उपगूहन अगको धारण करनेवाला समझना चाहिये। संसारमे ऐसे पुरुष सदा श्रेष्ठ कहलाते है ॥५६॥

अर्थ—मायाचारी पूर्वक सयमको धारण करनेवाले मायाचारीसे क्षुल्लकका भेष धारण करनेवाले सूर्य नामके चोरने सेठ जिनेन्द्रभक्तके चैत्यालयमे जाकर छत्रमे लगे हुए रत्न चुराये थे। परन्तु सेठ जिनेन्द्रभक्तने धर्मकी निदा समझकर उसका वह अपराध प्रगट नही किया था और इस प्रकार उपगूहन अगको पालनकर जैनधर्मकी पवित्रता स्थिर रक्खी थी ॥५७॥

अर्थ—सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान वा सम्यक्चारित्ररूप मोक्ष मार्गसे भ्रष्ट वा पतित होत हुए भव्य जीवोको अपनी तन मन धन आदिकी शक्ति लगा कर फिर उनको उसी रत्नत्रय रूप धर्ममे स्थापना करना स्थिर रखना स्थितिकरण अग कहलाता है ॥५८॥

अर्थ—काम क्रोध मद उन्मत्तता और प्रमादसे स्वेच्छाचार पूर्वक विहार करनेवाले भोले सम्यग्दृष्टी साधर्मी भाइयोको तथा स्वत अपनी आत्माको श्रेष्ठधर्मम सदा स्थिर रखना चाहिए ॥५९॥

अर्थ—हिताहितके विचारसे रहित अज्ञानताको धारण करनेवाले बालक जन अथवा शक्ति हीन असमर्थ पुरुषोको किसी व्रतसे चलायमान होते हुए देखकर भी जो नही देखनेके समान आचरण करता है अथवा देखकर भी उनको स्थिर नही करता है उसे धर्मका अपराधी समझना चाहिये। भावार्थ—स्थितिकरण अगका पालन न करना धर्मका अपराध करना

है। इसलिए प्रत्येक भव्य जीवको स्थितिकरण अंगका पालन करना अत्यावश्यक है ॥६०॥

अर्थ—सम्यग्दर्शन रूपी नेत्रको धारण करनेवाली रानी चेलनाने ज्येष्ठा नामकी गर्भवती आर्यिकाका उपचार कर उसे फिरसे शुद्ध व्रतोंमें स्थापना किया था ॥६१॥

अर्थ—पुष्पडाल नामके मुनिका चित्त अपनी सुदत्ती नामकी स्त्रीमें आसक्त रहता था और इसीलिए वे मुनि अपने मुनि व्रतसे चलायमान होना चाहते थे परन्तु मुनिराज वारिषेणने उनकी रक्षा की थी उनको व्रतोंसे चलायमान नहीं होने दिया था तथा उनके व्रतोंमें ही उनको दृढ़ किया था ॥६२॥

अर्थ—उत्तम चारित्रको धारण करनेवाले मुनिराजोंका तथा धर्मात्मा गृहस्थोंका यथायोग्य आदर सत्कार करना पूजा सेवा कर उनका वैयावृत्य करना इत्यादि विधानोंके द्वारा वात्सल्य अङ्ग कहलाता है ॥६३॥

अर्थ—मुनिराजोंका आदर सत्कार करना, उनको उच्चासन देना, उनकी सेवा चाकरी करना, उनको नमस्कार करना, मिष्ट वचन कहना, भक्ति करना, चरण दाबना तथा उन पर आये हुए उपद्रवोंको दूर करना तथा देशकालकी अपेक्षासे आवश्यकतानुसार और उनका उपकार करना वात्सल्य अङ्ग कहलाता है ॥६४॥

शाली वनाना चाहिये । तथा दान देकर, तपश्चरण कर, भगवान् जिनेन्द्रदेवकी उत्कृष्ट पूजा कर तथा अनेक विद्याओका अतिशय दिखलाकर इस जैनधर्मको सदा प्रभावशाली वनाना चाहिये ॥६६॥

अर्थ—विना किसी सासारिक सुखोकी अपेक्षाके शास्त्रोका उपदेश देकर, विद्याकी चतुरता प्रगट कर, निर्दोष विज्ञानको धारण कर, दान देकर और भगवान जिनेन्द्रदेवकी पूजा कर भगवान जिनेन्द्रदेवके शासनको महिमा सदा प्रगट करते रहना चाहिये । इसीको प्रभावना अग कहते है ॥६७॥

अर्थ—महाराज पूतिक नामके राजाने अपनी उर्मिला नामकी रानीके द्वारा किया गया भगवान जिनेन्द्रदेवका रथोत्सव बन्द कर दिया था परन्तु मुनिराज वज्रकुमारने वह रथोत्सव वडे धूमधाम से नगर भरमे घुमाया था और जैन धर्मकी वडी भारी प्रभावना की थी ॥६८॥

अर्थ—जो पुरुष अपने हृदयमे ऊपर लिखे हुए आठो अगो सहित सम्यग्दर्शन धारण करता है उसीका सम्यग्दर्शन दृढ समझना चाहिये । यदि वही सम्यग्दर्शन अगोसे रहित हो तो फिर उसकी हानि ही समझना चाहिये ॥६९॥

अर्थ—इन ऊपर लिखे अगोके सिवाय सम्यग्दर्शन के सवेग निर्वेद निंदा गर्हा उपशम भक्ति वात्सल्य और अनुकम्पा ये आठ गुण और होते है ॥७०॥

अर्थ—जन्म मरण आदि अठारह दोषोसे रहित देवमे हिंसादि दोषोसे रहित धर्ममे, आत्माका हित करनेवाले शास्त्रमे और परिग्रह रहित गुरुमे अत्यन्त अनुराग वा प्रेम रखना सवेग कहलाता है ॥७१॥

अर्थ— ये इन्द्रियोके भोग काले सर्पके फणके समान है तथा यह जन्ममरण रूप ससार सज्जन पुरुषोको अत्यन्त दु ख देनेवाला है और यह शरीर अनन्त रोगोका घर है ऐसे इस ससार शरीर और भोगोसे विरक्त होना वैराग्य धारण करना निर्वेद कहलाता है ॥७२॥

अर्थ—पुत्र मित्र स्त्री आदि कुटुम्बके लिये जो पाप कार्य किये जाते है उनके लिये अपनी निदा की जाती है उसको चतुर लोग निदा कहते है । भावार्थ—अपने आत्मासे किये गये पाप कर्मोकी निदा करना व अपने द्वारा किये गये दुष्ट कार्योका पश्चाताप पूर्वक अपनी निदा करना निदा नामका गुण है ॥७३॥

अर्थ—राग द्वेष आदि विकारोके द्वारा जो पाप किये गये है उनकी श्रेष्ठ गुरुके सामने बैठकर भक्ति पूर्वक आलोचना करना गुरुके सामने उन सब पापोको निवेदन कर उनकी आलोचना करना गर्हा कहलाती है ऐसा भगवान अरहतदेवने निरूपण किया है ॥७४॥

अर्थ—जिसके हृदयमे राग द्वेष मोह मद काम वा क्रोधादिक कषाय आदि दोष स्थिरताको प्राप्त नही होते उस श्रेष्ठ भव्य जीवके उपशम गुण समझना चाहिये । उसका आत्मा बहुत शांत रहता है ॥७५॥

अर्थ—इन्द्र चक्रवर्ती आदि महापुरुष भी जिनकी सेवा करते है ऐसे भगवान अरहतदेव और निर्ग्रंथ गुरुकी पूजा करना सेवा करना स्तुति करना और उनकी सब प्रकारकी विनय करना भक्तिगुण कहलाता है । भावार्थ—अरहत सिद्ध आचार्य उपाध्याय और साधु ये पंच परमेष्ठी कहलाते है इन पाचो परमेष्ठियो की तथा चैत्य, चैत्यालय जिनागम जिनधर्मकी

विनयपूर्वक पूजा स्तुति आदर सत्कार आदि करनेको भक्ति कहते है ॥७६॥

अर्थ—जो मुनि किसी स्वाभाविक रोग आदिसे दु.खी है उनकी औपधि आदि से सेवा सुश्रुपा करना वात्सल्य गुण कहलाता है ॥७७॥

अर्थ—दुखोके सागर ऐसे इस संसारमे परिभ्रमण करते हुए प्राणियो पर सम्यग्दृष्टि दयालुके हृदयमे जो दयाभाव उत्पन्न होता है उसको कारुण्य कहते है। भावार्थ—कोमल प्रगट परिणामोसे समस्त प्राणियोपर दयाभाव करना कारुण्य है ॥७८॥

अर्थ—जिसके हृदयमे ऊपर लिखे हुए आठ गुणोसे सुशोभित सम्यग्दर्शन विराजमान रहता है उसके घरमे यह लक्ष्मी सदाके लिये अपना निवास बना लेती है ॥७९॥

अर्थ—तीन मूढता, आठ मद, छह अनायतन, और आठ शकादिक दोष इस प्रकार सम्यग्दर्शनके पच्चीस दोप कहे जाते है ॥८०॥

अर्थ—जो क्रूरदेव राग द्वेषसे व्याकुल है वे सब जिनागम मे त्याग करने योग्य बतलाये है। जो कोई पुरुष ऐसे देवताओ की उपासना करता है उसको आचार्य देव मूढता कहते है। भावार्थ—अन्य मतमे माने हुए देव विषय कपायोके आधीन रहते है उनके साथ शस्त्र पुत्र स्त्री वाहन आदि सब रहते है और ये सब विपय कपाय चिन्ह है। ऐसे देव कुदेव कहलाते है। ऐसे देवोकी उपासना करना देव मूढता कहलाती है। मूढताका अर्थ अज्ञान है देव सम्बन्धी अज्ञानताको देवमूढता कहते है। जिन शासनदेव इनसे भिन्न है। जिन शासनदेव सम्यग्दृष्टी होते है। ये शान्त मन्दकपायी और जिनभक्त होते है। जिन शासन देवता तथा मिथ्यादेवोमे क्या अन्तर है। इसका

खुलासा आदिपुराणमे नीचे लिखे अनुसार लिखा है * ॥८१॥

अर्थ—जिनागममे विश्वेश्वर चक्रेश्वरी पद्मावती आदि देवता शातिके लिए वतलाये है। परन्तु जिनपर वलि चढाई जाती है जीव मारकर चढाये जाते है ऐसे चडी मुडी आदि देवता त्याग करने योग्य है। इसका भी खुलासा इस प्रकार है।

अर्थ—जो देव मिथ्यात्वीक्रूर हिसक है, शस्त्र, परिग्रह सहित है मासकी वृत्ति और मद्यकी वृत्ति होनेसे निद्य और हीन है ऐसे ब्रह्मा विष्णु उमा चण्डी मुण्डी आदि देवता कुदेवता कहलाते है उनकी पूजा करना मिथ्यात्वका कारण है। इसलिए

---

* भगवान् समन्तभद्र स्वामीने अपने रत्नकरण्ड श्रावकाचारमे देवमूढताका स्वरूप इस प्रकार लिखा है।

अर्थ—इसलोक सम्वन्धी सासारिक सुखोकी आशा रखने वाला जो मनुष्य किसी वरकी इच्छासे राग-द्वेपसे मलिन देवताओकी उपासना करता है उसे देवमूढता कहते है। इस प्रकार देवमूढताकी सभावना अन्यमतके माने हुए देवोमे होती है। सम्यग्दृष्टी जीवोमे मिथ्यात्व दर्शनमोहनीय कर्म सम्वन्धी राग-द्वेप नही होता है। इसीलिए आगममे सम्यग्दृष्टीको जिन सज्ञा मानी गई है। मिथ्यामतमे माने हुये देवोको जिनसज्ञा कभी नही हो सकती। इसलिए मूढता भी अन्य मतके देवोमे ही होती है। सम्यग्दृष्टी शासन देवोमे नही। इस श्लोकमे आशा रखनेवाला किसी वरकी इच्छासे ऐसे एकसे दो शब्द दिये है उनसे यही सूचित होता है कि जो लोग सासारिक विषय भोगोकी आशामे लीन रहते है वे ही पुरुष वरकी इच्छा करते है ऐसे पुरुष मिथ्यादृष्टी ही होते है और वे अन्य मतके माने हुये देवोकी उपासना करते है। सम्यग्दर्शन और सम्यग्दृष्टी का यथायोग्य आदर सत्कार करना धर्मका मुख्य अग है। इस-लिए इनमे मूढता कभी नही होती है ॥८२॥

मिथ्या भेषको धारण करनेवाले ऐसे कुदेव त्याज्य है परन्तु जो देव सम्यग्दृष्टी है जो जिन धर्मकी प्रभावना करनेवाले है ऐसे चक्रेश्वरी दिक्पाल यज्ञ आदि देवता शाति प्रदान करने वाले है। ऐसे देव सम्यग्दृष्टि होने के कारण पूज्य हैं ऐसा जैन शास्त्रोका आदेश है उनकी पूजा करने मे देव मूढता नही होती क्योकि सम्यग्दृष्टी जीव सदा पूज्य होता है।

अर्थ—सूर्यग्रहण वा चन्द्रग्रहणमे स्नान करना, सूर्यके विमानको देव समझकर अर्घ चढाना, घोडा, शस्त्र * हाथी आदि की पूजा करना गगा सिधु आदि नदियोमे धर्म समझकर स्नान करना, सक्रातिमे दान देना, गोमूत्र की वदना करना, गायोकी वदना करना, वटवृक्षकी पूजा करना, देहलीकी पूजा करना, मरे हुओको पिडदान देना आदि सब लोक मूढता है ऐसी लोक मूढता सदा त्याज्य है ॥८२,८३॥

अर्थ—जो गुरु होकर भी आरम्भ और परिग्रह * रखते हे तथा मन्त्र औषधि आदिसे अपनी जीविका करते है ऐसे पाखडी गुरुओकी सेवा सुश्रूषा करना उनकी विनय करना पूजा आदर

*यद्यपि चक्रवती शस्त्र और घोडे आदिकी पूजा करता है परन्तु वह धर्म समझ कर उनकी पूजा नही करता केवल उपकारी समझकर उनका आदर सत्कार करता है। ऐसी बहुत सी क्रियाये है जिन्हे मिथ्यादृष्टी भी करते है और सम्यग्दृष्टी भी करते है परन्तु उद्दश्य दोनो का भिन्न भिन्न होता हे इसीलिए उनकी क्रियाए मिथ्यात्व वा सम्यक्त्वको पुष्ट करने वाली हो जाती है।

* जिसके हृदयमे भगवान अरहत देवके कहे हुये तत्वोका दृढ श्रद्धान है और जिन्होने वीतरागभाव धारण कर समस्त परिग्रहो का त्यागकर नग्न मुद्रा धारण की है तथा विषय कषाय

कहते है। भावार्थ—ऊपर लिखे हुए पाठकोका अभिमान करना आठ मद कहलाते हैं ॥८५॥

अर्थ—मिथ्यादर्शन मिथ्याज्ञान मिथ्याचारित्र तथा इन तीनोको अलग अलग सेवन करने वाले पुरुष ये छह अनायतन कहलाते हैं। ये छहो अनायतन रत्नत्रयरूपी कल्पवृक्षके वनको जलानेके लिये अग्निके समान है। भावार्थ—आयतन शब्द का अर्थ स्थान है। जैनमन्दिर आदि धर्मके स्थानोको आयतन कहते है जो धर्मके आयतन न हो उनको अनायतन कहते है ॥८६॥

अर्थ—शङ्कादिक आठ दोष, आठ मद, तीन मूढता और छह अनायतन ये पच्चीस सम्यग्दर्शनके दोप कहलाते है। जो सम्यग्दर्शन इन पच्चीसो दोषोसे रहित है वही सम्यग्दर्शन मुक्ति रूपी स्त्रीके प्रेमका कारण होता है अर्थात् उसीसे मोक्षकी प्राप्ति हो सकती है। इसलिये जो पुरुप जन्ममरण रूप ससार से भयभीत है उन्हे निर्दोप सम्यग्दर्शनकी ही आराधना करनी चाहिए और वह भी अच्छी तरह करनी चाहिए ॥८७॥

अर्थ—सम्यग्दृष्टी पुरुप पृथ्वी कायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक वनस्पतिकायिक इन पॉचो स्थावरकायोमे तथा दो इन्द्रिय तेइन्द्रिय चौइन्द्रिय इन तीन विकलत्रयोमे निगोदमे असैनी पचेन्द्रिय कुभोगभूमियोमे और म्लेक्षखण्डमे इस प्रकार मिथ्यात्वके बारह स्थानोमे उत्पन्न नही होते है। इनके सिवाय तिर्यच योनिमे, नरकोमे, नपुसक लिगमे, स्त्रीपर्यायमे, भवनवासी व्यन्तर और ज्योतिषी देवोमे तथा सब तरहकी देवियोमे और नीचेकी छह पृथ्वियोमे उत्पन्न नही होते है। इनके सिवाय वे जीव अल्प आयु दरिद्री और हीन कुलमे उत्पन्न नही होते है ॥८८,८९॥

अर्थ—यह भव्य जीव सम्यग्दर्शनके प्रभावसे तीर्थकर चक्रवर्ती आदि उत्तमोत्तम पदोकी दैदीप्यमान विभूतियोको पाकर अन्तमे मोक्षरूपी परमपदको प्राप्त करते है ॥९०॥

अर्थ—सम्यग्दर्शनकी अधिक महिमा वर्णन करनेसे कोई लाभ नही है थोडेसेमे इतना समझ लेना चाहिये कि इस ससारमे जो प्राणी मोक्षमे जा चुके है वा जा रहे है वा जायगे वह सब एक सम्यग्दर्शनका ही माहात्म्य समझना चाहिये ॥९१॥

अर्थ—जो पुरुष जूआ चोरी आदि सातो व्यसनोसे रहित है, भगवान् जिनेन्द्रदेवकी पूजा करनेमे सदा तत्पर रहते हैं और सम्यग्दर्शनसे सुशोभित है वे ही पुरुष श्रावक कहलाते है। ऐसे श्रावक इस ससारमे धन्य माने जाते है ॥९२॥

अर्थ—इस ससारमे यह मनुष्यपर्याय करोड़ो भवोमे भी बडो कठिनता से प्राप्त होती है। तथा ऐसा अत्यन्त दुर्लभ मनुष्य जन्म पाकर के भी उत्तम जाति और उत्तम कुलकी प्राप्ति होना अत्यन्त कठिन है। ऐसे मनुष्य जन्म और उत्तम कुल जातिको पाकर सम्यग्दर्शनके रहित कभी नही होना चाहिये* भावार्थ—अनादिकालसे वशपरपरामे चली आई माताके

---

* जिस जाति वा कुलमे वशपरम्परामे विजातीय विवाह (जिसको अज्ञानी लोग अन्तर्जातीय विवाह कहते है) विधवा-विवाह आदि हीन मलिनाचार नही होते है तथा यज्ञोपवीत आदि उत्तम सस्कार वशपरम्परासे चले आरहे है वही जाति और कुल सज्जाति कहलाती है। सज्जातिमे उत्पन्न हुए मनुष्यो को ही देवपूजा वा मुनियोको दान देनेका अधिकार है। जो सज्जाति रहित है उनको देवपूजा वा मुनि दान देनेका अधिकार नही है। जो निर्ग्रंथ लिंग, धारण करने की योग्यता रखता है वही देव पूजा आदि कर सकता है। विधवा विवाह और विजातीय विवाह करनेवाले पुरुष शूद्रके समान हीन माने जाते है।

कुलकी विशुद्धिको जाति कहते है पिताके कुलकी शुद्धिको कुल कहते है। तथा दोनोको विशुद्धिको सज्जाति कहते है। खडेलवाल आदि सज्जातिया कहलाती है। ये सज्जातिया सप्त परमस्थानोमे मुख्य मानी जाती है ऐसी सज्जातिको पाकर सम्यग्दर्शनकी विशुद्धि अवश्य कर लेनी चाहिये ॥९३॥

अर्थ—जो पुरुप देवपूजा गुरुकी उपासना, स्वाध्याय सयम तप और दान इन छहो कर्मोके करनेमे तल्लीन रहता है जिसका कुल उत्तम है और जो देवपूजा आदि कर्मोमे ही चूली उखली चक्की बुहारी परण्डी घरकी मरम्मत घरके नित्य होनेवाले पापोको नष्ट करता रहता हे वही उत्तम श्रावक कहलाता है। भावार्थ—देव पूजा आदि श्रावकोका आवश्यक कर्म है। इस प्रकरणमे ग्रथकारने कुलसत्तम ऐसा एक श्रावकका विशेषण दिया है। इससे यह सूचित होता हे कि जिसकी कुल और जाति उत्तम है उसीको देवपूजा आदि षट्कर्म करनेका अधिकार है। जिसकी जाति वा कुल हीन है उसको देवपूजा आदि करनेका कोई अधिकार नही है। हा अपनी योग्यताके अनुसार ऐसे लोग दर्शन आदिकार्य कर सकते है ॥९४॥

अर्थ—इस प्रकार इस प्रथम अधिकारमे सम्यग्दर्शनका वर्णन किया। अव आगे इस सम्यग्दर्शनको दृढ करनेके लिए इस दूसरे अधिकारमे जिनपूजनका वर्णन करते हैं ॥९५॥

अर्थ—विद्वान् पुरुष भगवान् जिनेन्द्रदेवकी नित्य पूजा किस प्रकार करते है वा उनको किस प्रकार करनी चाहिये यही वर्णन हम इस अध्यायमे पहलेके शास्त्रोके अनुसार कहते है ॥९६॥

अर्थ—पूर्वदिशाकी ओर मुख करके स्नान करना चाहिये, पश्चिम दिशाकी ओर मुख करके दातौन करनी चाहिये, उत्तर दिशाकी ओर मुख करके सफेद वस्त्र पहनना चाहिये और पूर्व-

दिशा वा उत्तर दिशाकी ओर मुह् करके भगवान् जिनेन्द्रदेवकी पूजा करनी चाहिये । * भावार्थ—यदि जिनप्रतिमाका मुख पूर्व दिशाकी ओर हो तो उत्तर मुख होकर अभिषेक वा पूजा करनी चाहिये यदि जिनप्रतिमाका मुख उत्तर दिशाकी ओर हो तो पूजकको अपना मुख पूर्व दिशाकी ओर करके पूजन करनी चाहिये ॥९७॥

अर्थ--अब आगे गृह चैत्यालय बनानेका विधान बतलाते हैं, गृहमें प्रवेश करते समय जिस दिशामें अपना बाया अंग हो घरके उसी भागमें चैत्यालय बनना चाहिये । चैत्यालय शल्य रहित उत्तम भूमिमें बनवाना चाहिये अर्थात् जिस भूमिमें हड्डी आदि किसी मलिन पदार्थके रहनेका सदेह न हो ऐसे स्थानमें चैत्यालय बनवाना चाहिये । उस चैत्यालयमें वेदीकी ऊंचाई डेढ़ हाथ होनी चाहिये । यदि वेदीकी ऊंचाई डेढ़ हाथसे कम होगी तो वह बनवानेवाला अपनी संततिके साथ ही नीचता को प्राप्त होगा । भावार्थ—वेदीकी ऊंचाई डेढ़ हाथ होनी चाहिये । इससे न तो ऊंची होनी चाहिये और न नीची होनी चाहिये । वह वेदी इस प्रकार बनवानी चाहिये जिसमें पूजकको सब सुभीता हो ॥९८,९९॥

मनोरथोको सिद्ध करनेवाली है, चैत्यालयोमे विराजमान करनेके लिये शास्त्राकारोने ग्यारह अगुल प्रमाण ही प्रतिमा बतलाई है। उसीसे समस्त कार्योकी सिद्धि हो सकती है। चैत्यालयोमे इससे अधिक ऊ ची प्रतिमा कभी विराजमान नही करना चाहिये ॥१००॥

अर्थ—गृहस्थोके चैत्यालयमे एक अगुल प्रमाण जिनप्रतिमा श्रेष्ठ गिनी जाती है। दो अगुलकी प्रतिमासे धनका नाश हो जाता है। तीन अगुलकी प्रतिमा विराजमान करनेसे वृद्धि होती है और चार अगुलकी प्रतिमा विराजमान करनेसे पीडा होती है ॥१०१॥

अर्थ—पाच अगुलकी प्रतिमा विराजमान करनेसे वृद्धि होती है, छह अगुलकी प्रतिमा विराजमान करनेसे उद्वेग होता है, सात अगुलकी प्रतिमा विराजमान करनेसे गोधनकी वृद्धि होती है और आठ अगुलकी प्रतिमा विराजमान करनेसे हानि होती है। ॥१०२॥

अर्थ—नौ अगुलकी प्रतिमा विराजमान करनेसे सतानकी वृद्धि होती है और दश अगुलकी प्रतिमासे धनका नाश होता है इस प्रकार एक अगुलसे लेकर ग्यारह अगुल तकको प्रतिमा घरके चैत्यालयमे विराजमान करनेका वर्णन किया। जिन मन्दिर के लिये यह नियम नही है जिनमन्दिरमे चाहे जितनी ऊची प्रतिमा विराजमान कर सकते है। यद्यपि जिन प्रतिमा पुण्यवन्धका कारण है तथापि वस्तुका स्वभाव भी भिन्न २ होता है। तथा पूजा करनेवालोकी कामनाये भी भिन्न २ होती है। और कामनाओ के अनुसार विधि भी भिन्न २ होती है। पूज्य-पूजक मन्त्र विधि आदि समस्त सामग्रीके अनुसार मनोकामना की सिद्धि होती है। यदि इनमे कोई भी सामग्री विपरीत हो तो उसका फल भी विपरीत ही होता है। पूजनकी

विधिमे प्रतिमाकी श्रेष्ठता और उसका प्रमाण भी मन्त्रशास्त्र से सम्बन्ध रखता है । मन्त्रशास्त्रोमे लिखा है कि यदि प्रतिमा कुरूप हो उसकी दृष्टि वक्र हो या उसका आकार कुत्सित हो तो उससे पूजककी हानि होती है यह बात प्राय सब लोगोके अनुभवमे आरही है। जिस प्रकार वक्रदृष्टि वाली प्रतिमासे पूजकको हानि होती है उसी प्रकार यदि सम अगुलवाली प्रतिमा (दो चार छह आठ वा दश अगुलकी प्रतिमा) घरके चैत्यालयमे विराजमान की जाय तो उससे हानि होती है यह सख्याकी समता और विषमता अनेक स्थानोमे शुभ अशुभकी सूचक होती है। शुभ कार्योमे विषम सख्या ही शुभ मानी जाती है सम सख्या कभी शुभ नही मानी जाती। इसीलिए इस अगुलो को प्रतिमाएँ घरके चैत्यालयोमे शुभ नही होती है ॥१०३॥

अर्थ—घरका चैत्यालय घरके ऊपरो भाग पर बनवाना चाहिए और इसमे जिनप्रतिमा विराजमान कर उनकी पूजा करनो चाहिए। काठकी प्रतिमा, लेपकी प्रतिमा, पाषाणकी प्रतिमा, सोना चादी ताबा पीतल लोहा आदि धातुओंकी प्रतिमा बनवाकर घरके चैत्यालय मे विराजमान करनी चाहिए। वह प्रतिमा भी ग्यारह अगुल से ऊँची नही होनी चाहिए तथा वह प्रतिमा आठ प्रातिहार्य यक्ष यक्षी सहित होनी चाहिए। * अरहन्त

---

* प्रतिमाका निर्माण प्रतिष्ठाशास्त्रोके अनुसार कराना चाहिए प्रतिष्ठाशास्त्रोमे अरहन्त प्रतिमायो लक्षण आठ प्राति हार्य सहित तथा यक्ष यक्षी सहित बतलाया है। केवलज्ञान सहित समवशरणमे विराजमान अरहन्त होते हे। उनकी प्रतिमा भी वैसी ही होती है। जिनप्रतिमा पर अरहन्त अवस्थाके प्राति-हार्य यक्ष यक्षी आदि चिन्ह न हो तो उसको अरहन्त प्रतिमा नही कह सकते फिर वह सिद्धोकी प्रतिमा हो जाती है। अरहन्त

की प्रतिमा प्रातिहार्य और यक्ष यक्षी सहित ही होता है। यदि अरहन्तकी प्रतिमा न मिले तो घरके चैत्यालयमे केवल सिद्धो की प्रतिमा विराजमान नही रहनी चाहिए। सिद्धोकी प्रतिमा जिनमन्दिरमे ही विराजमान करनी चाहिए। काठ लेप और लोहे की प्रतिमा इस पचम कालमे विराजमान नही करना चाहिए क्योकि काष्ठ और लेप प्रतिमाका अभिषेक नही हो सकता। काठकी प्रतिमाका अभिषेक करनेसे उसमे जीवराशि उत्पन्न होने की सभावना रहती है तथा लेप प्रतिमाकी प्रतिष्ठा ही नही हो सकती। ऐसी प्रतिमाके विराजमान करनेसे लाभके के बदले हानि ही होती है ॥१०४,१०५,१०६॥

अर्थ—जिस जिनभवन पर ध्वजा नही होती है उस जिनभवन मे किया हुआ जप होम पूजा आदि सब व्यर्थ हो जाता है। इसलिये जिनभवन पर ध्वजा—स्तम्भ अवश्य होना चाहिए। भावार्थ—जिनमन्दिर पर शिखर और शिखरसे ऊचा ध्वजस्तम्भ होना चाहिए। शिखरके कलशोसे ध्वजा सदा ऊची होनी चाहिए नीची ध्वजा शुभ नही होती है। जिस प्रकार व्रत की पूर्णता उद्यापनसे होती है। भोजनकी पूर्णता और शोभा ताम्बूलसे होती है उसी प्रकार जिनभवनकी शोभा और पूर्णता शिखर कलश और ध्वजास्तम्भसे होती है ॥१०७॥

अर्थ—जिस प्रतिमाकी पूजन करते हुए सौ वर्ष व्यतीत हो गये है अथवा जिस प्रतिमाका साक्षात् अतिशय हो और जो प्रतिमा किसी महापुरुषके द्वारा स्थापित की गई हो वह प्रतिमा यदि अगहीन हो तो भी पूज्य मानी जाती है। भावार्थ-अगहीन प्रतिष्ठित प्रतिमा भी अपूज्य होती है परन्तु अतिशय सहित प्रतिमाका यदि कोई उपाग भङ्ग हो गया हो तो वह पूज्य ही मानी जाती है ॥१०८॥

अर्थ—जो प्रतिमा शिल्पशास्त्र वा प्रतिष्ठाशास्त्रोके अनुसार बनवाई हो सांगोपांग हो और अपने पूर्ण लक्षणोसे सुशो-

भित हो ऐसी प्रतिष्ठित प्रतिमा पूज्य मानी जाती है। प्रतिष्ठा होनेके वाद यदि नाक मुख नेत्र हृदय और नाभिमडलसे हीन होगई है नाक मुख नेत्र हृदय नाभि आदि अग भग होगये हो तो वह प्रतिमा अपूज्य हो जाती है फिर उसकी पूजा नही करनी चाहिये। उसको फिर किसी गहरे जलमे पधरा देनी चाहिये ॥१०९,११०॥

अर्थ—जो प्रतिष्ठित प्रतिमा अत्यन्त जीर्ण हो गई हो तथापि वे अतिशय सहित हो तो भी वे पूज्य मानी जाती है। परन्तु जिन प्रतिमाका मस्तक न रहा हो या छिन्न भिन्न होगया हो ऐसी प्रतिमा कभी पूज्य नहीं मानी जाती। ऐसी प्रतिमा किसी गहरे पानीमे डुवा देना चाहिये ॥१११॥

अर्थ—श्रावकको अपने घरके विभाग इस प्रकार वनाने चाहिये पूर्व दिशाकी ओर शोभागृह (वैठक वा कमरा) आग्नेय दिशामे रसोई घर, दक्षिण दिशामे शयन करनेका स्थान, नैऋत दिशामे आयुधशाला, पश्चिम दिशामे भोजनगृह, वायव्य दिशा मे धन सग्रह करनेका घर, उत्तर दिशामे जल स्थान (परण्डा) और ईशान दिशामे देव स्थान वनाना चाहिये ॥११२,११३॥

अर्थ—जो भव्य जीव एक अगुल प्रमाण प्रतिमाकी प्रतिष्ठा कराकर नित्य पूजन करता है वह असख्य पुण्यकर्मोका सचय करता है। उस प्रतिमाके विराजमान करने और उसकी पूजा करनेके फलको इस ससारमे कोई कह भी नही सकता है ॥११४॥

अर्थ—जो पुरुप विम्वाफलके पत्तेके समान वहुत छोटा चैत्यालय वनाता है तथा उसमे जौ के समान छोटी सी प्रतिमा विराजमान करता है। इस प्रकार जो भगवान्की पूजा करता है समभना चाहिये कि मुक्ति उसके अत्यन्त समीप ही आ चुकी

है। भावार्थ—जो गृहस्थ विशेष धनवान नही है उनको भी अपनी शक्तिके अनुसार जौके समान छोटीसी प्रतिमा बनाकर प्रतिदिन उसकी पूजा करनी चाहिये। तथा जिनालय भी छोटे से छोटा बनवाना चाहिये। जो श्रावक चैत्यालय वा प्रतिमा नही बनवाता उसे अपने कर्तव्यसे च्युत समझना चाहिये। जिन प्रतिमा और जिन मन्दिर बनवानेके समान इस ससारमे अन्य कोई दूसरा पुण्य नही है। एक प्रतिमा बनवाकर उसकी प्रतिष्ठा करानेसे अनन्त पुण्यका बध होता है। ससारमे ऐसे मनुष्य अत्यन्त धन्य माने जाते है ॥११५॥

अर्थ—यदि जिन प्रतिमाका मुख पूर्व दिशाकी ओर हो तो पूजा करनेवालेको उत्तर दिशाकी ओर मुह करके पूजा करनी चाहिये। यदि प्रतिमाका मुख उत्तर दिशाकी ओर हो तो पूजकको पूर्व दिशाकी ओर मुह करके पूजा करनी चाहिये। जिन प्रतिमाके सामने खडे होकर पूजन कभी नही करनी चाहिए। इसी प्रकार दक्षिण दिशाकी ओर वा विदिशाकी ओर मुंह करके कभी पूजन नही करनी चाहिये। * ॥११६॥

---

* उदग्मुख स्वय तिष्ठेत् प्राङ्मुख स्थापयेज्जिनम्।
पूजाक्षणेभवेन्नित्य यमी वाचयमक्रिय·।

जिन प्रतिमाको पूर्व मुख विराजमान कर स्वय उत्तर मुख होकर पूजा करनी चाहिये पूजा करते समय पूजकको मौन धारण कर पूजा करनी चाहिये।

मत्र शास्त्र कहते है कि आकर्षण कर्ममे दक्षिण दिशा श्रेष्ठ है, शान्ति कर्मके लिए वरुण दिशाकी ओर मुह करके बैठना चाहिये पौष्टिक कर्ममे नैऋत्य दिशा, स्तभन कर्ममे पूर्व दिशा श्रेष्ठ मानी जाती है। यदि इन कार्योंको करनेवाला इनसे विप-

अर्थ—यदि भगवान जिनेन्द्रदेवको पूजा पश्चिम मुख होकर को जाती है तो उससे, सन्ततिका नाश होता है। यदि दक्षिण दिशाकी ओर मुखकर की जाती है, तो सन्ततिका अभाव हो जाता है ।।११७।।

अर्थ—आग्नेय दिशाकी ओर मुखकर पूजा करनेसे प्रतिदिन धनकी हानि होती है वायव्य दिशाकी ओर मुखकर पूजा करनेसे

रीत दिशाओकी ओर मुह करके मत्र प्रयोग करता है तो उसका फल भी विपरीत ही होता है। इसी प्रकार भगवान्की पूजा का फल भी समझना चाहिये। भगवानकी पूजा भी मत्रोसे की जाती है। उन मत्रोका फल विधि पूर्वक होनेसे इच्छानुसार होता है और विपरीत विधिसे विपरीत होता है। पूजामे पच कल्याणक पूजा सर्वोत्कृष्ट मानी जाती है परन्तु पच कल्याणक पूजाके करनेवाले अनेक लोग आज धनहीन वा कुलहीन देखे जाते हे। इसका कारण केवल अविधि है। इसलिए पूजा, सामायिक, जप, ध्यान, होम, मत्राराधन आदि कार्य यदि आत्म कल्याणके लिए किये जाय तो पूर्व दिशा वा उत्तर दिशाको मुह करके ही करना चाहिये भगवान जिनेन्द्रदेवकी ऐसी ही आज्ञा है। तीर्थकर भगवान वा मुनिराज पूर्वदिशा वा उत्तर दिशाकी ओर मुख करके ही ध्यान करते है। सामायिक आदि षट्कर्म भी पूर्वमुख वा उत्तरमुख होकर किये जाते है। तीर्थकर भगवान वा सामान्य केवली भगवान पूर्वमुख वा उत्तरमुख ही विराजमान होते है। मेरुपर्वत पर जो तीर्थकरोका अभिषेक किया जाता है वह भी पूर्वमुख वा उत्तरमुख होकर ही किया जाता है। अभिषेक भी पूजाका एक अग है। इन्द्र भी पूर्वोत्तरमुख होकर ही जन्माभिषेक वा प्रतिमाका अभिषेक करते है इसलिए भगवानकी पूजा पूर्वोत्तर मुख होकर ही करना चाहिये।

सन्तत नही होती और नैऋत्य दिशाकी ओर मुखकर पूजा करनेसे कुल क्षय होता है ।।११८।।

अर्थ—ईशानमुख होकर पूजा करनेसे सौभाग्य नष्ट होता है पूर्वमुख होकर पूजा करनेसे शाति प्राप्त होती है और उत्तरमुख होकर पूजा करनेसे धनकी वृद्धि होती है ।।११९।।

अर्थ—पूजा करनेवाले गृहस्थको विना तिलक लगाये पूजा कभी नही करनी चाहिए । तिलक स्थान नौ है । चरण, घोटू, हाथकी कुहनी, हाथ, मस्तक, ललाट, कण्ठ, हृदय और उदर । इन नौ स्थानोमे चन्दन आदिका तिलक लगाकर पूजा करनी चाहिए नित्यपूजामे पाच तिलक भी लगाये जाते है तथा केवल ललाटपर एक तिलक भी लगाया जाता है । तिलक लगाये विना भगवानका अभिषेक पूजा जप होम वा अन्य कोई भी मागलिक कार्य नही करना चाहिए विना तिलक लगाये मागलिक कार्य अपशकुन समझा जाता है । * ।।१२०,१२१।।

अर्थ—यह तिलक मुक्तिरूपी लक्ष्मीका सर्वोत्कृष्ट आभूषण माना जाता है । इसीलिए विना तिलकके पूजा करनेवाले इन्द्र को इष्ट कार्य की सिद्धि नही होती । भावार्थ—अभिषेक पूजा होम जप आदि मगल कार्य सव तिलक लगाकर ही करने चाहिए ।।१२२।।

अर्थ—पूजा करने वाला इन्द्र कहलाता है इन्द्रको सोलह आभूषण पहनना चाहिए उसके अग उपाग सव परिपूर्ण होने चाहिए । वह विनयी हो, भक्ति करनेवाला हो, समर्थ हो, श्रद्धा रखनेवाला हो और लोभ रहित हो । उस समय उसे पद्मासनसे

* श्वेताम्वर लोग प्रतिमाके सव शरीरमे तिलक लगाते हैं परन्तु उनकी यह क्रिया जिनागमके सर्वथा विरुद्ध है । भगवान की प्रतिमाके चरणके अगूठे पर ही चन्दन का अर्चन किया जाता है । अन्यत्र कही नही ।

बैठकर[1] पूजा करनी चाहिए उसे अपने दोनों नेत्र अपनी नासिकाके अग्र भागपर रखने चाहिए मौन धारण करना चाहिए तथा अपना मुख वस्त्रसे ढक लेना चाहिए। इस विधिसे भगवानकी पूजा करनी चाहिए। भावार्थ—पूजा करनेवाला अपनेमें इन्द्रका संकल्प करता है। इसका भी कारण यह है कि भगवान् जिनेन्द्रदेव सर्वोत्कृष्ट देव हैं उनकी पूजा करनेका पात्र इन्द्र ही है यदि ऐसे भगवानकी हम लोग पूजा करना चाहते हैं तो हमें अपनेमें कम से कम इन्द्रका न्यास निक्षेप वा संकल्प अवश्य कर लेना चाहिए। इन्द्रके समान ही सोलह आभरण पहनना चाहिए और तिलक यज्ञोपवीत आदि धारण करना चाहिए। धोती, दुपट्टा, मुकुट, हार, कङ्कण, मुद्रिका, तिलक, यज्ञोपवीत आदि आभरण हैं जो अनेक पूजाशास्त्रोंमें बतलाये हैं। यथा—"इन्द्रोहं निज भूषणार्थममलं यज्ञोपवीतं दधे मुद्रा कङ्कणशेखराण्यपि तथा जैनाभिषेकोत्सवे" भावार्थ—भगवानका अभिषेक करनेके लिये मैं अपनेमें इन्द्रका संकल्प करता हूं यज्ञोपवीत कङ्कण मुद्रिका मुकुट आदि निर्मल आभूषणोंको धारण करता हूं। इसप्रकार अपनेमें इन्द्रका संकल्प कर भगवानकी पूजा करनी चाहिए।

---

१. भगवानकी पूजा बैठकर ही करनी चाहिए। यथा—

पर्यङ्कासनमारोह ... ... प्राङ्मुखोदङ्मुखः।

प्राङ्मुखो वा जिनपूजां जपहोमं करोति यः ॥—विद्यानुवाद

अर्थ—पद्मासन वा सुखासन आदिसे बैठकर उत्तरमुख या पूर्वमुख होकर भगवानकी पूजा या जप होम करना चाहिए।

पद्मासनसमासीनो [illegible] ।

[illegible] ॥

अर्थ—[illegible]

पूजा बैठकर की जाती है। इसका विशेष वर्णन पहले कर ही चुके है ॥१२४॥

अर्थ—श्रीजिनेन्द्रदेवकी पूजा विना चन्दनके कभी नही करनी चाहिए। चतुरपुरुषोको प्रात कालके समय चन्दनसे पूजा अवश्य करनी चाहिए। भावार्थ—प्रात कालमे भगवान् जिनेन्द्र देवकी पूजा उनके चरणारविदके अगुष्ट पर चन्दन लगाकर करनी चाहिए। यद्यपि भगवान्की पूजा अष्ट द्रव्यसे की जाती है और वह अभिषेक पूर्वक ही होती है तथापि अभिषेकके बाद चरणोपर चन्दन लगाना आवश्यक माना जाता है यदि अष्ट द्रव्य का समागम न मिले तो केवल भगवानके चरणके अगूठेपर चन्दन लगाने से ही भगवान्की पूजा समझी जाती है। यदि भगवान्के चरणो पर चदन न लगाया जाय और बिना चदन लगाए ही पूजा की जाती है तो वह पूर्ण पूजा नही समझी जाती प्रा कालके समय चदन-पूजा ही मुख्य मानी गई[1] है ॥१२५॥

अर्थ—मध्यान्ह कालमे पुष्पपूजा मुख्य मानी जाती है। सुन्दर ताजे सुगधित पुष्पोको शुद्ध जलसे धोकर शुद्धता पूर्वक भगवान् के चरण कमलोपर चढाना चाहिए। पुष्प भगवान् के सामने नही चढाए जाते किन्तु भगवान्के चरणोपर चढाए जाते है। सध्याकालके समय दीप और धूपसे पूजा करनी चाहिए। दीपसे भगवान् की आरती उतारी जाती है और धूप अग्नि मे खेई जाती है। आरती सामने उतारी जात हैं और धूप भगवाकेन् बाई ओर धूपदान रखकर उसमे खेई जाती है। भावार्थ—ऊपरके दोनो श्लोकोमे कालकी अपेक्षासे मुख्य-मुख्य पूजा बतलाई है। प्रात

१ चदणसुगध लेओ जिनवर चरणेसु जो कुणइ भविओ।
लहइ तणु विक्किरिय सहा व सुयधय अमल ॥
—आचार्य देवसेन कृत भावसग्रह।

कालमे चन्दन पूजा मुख्य बतलाई है, मध्यान्ह काल में पुष्प पूजा मुख्य है और सायकालमे दीप धूप पूजा मुख्य है। यदि कोई

जो भव्य जीव भगवान्‌के चरण कमलो पर चन्दनका विलेपन करता है चरणो पर चन्दन लगाता है वह निर्मल सुगधित वैक्रियक शरीर प्राप्त कर देव होता है।

ककोलकेलागुरुसप्रत्ययगूलवगकर्पूरकरजितेन।
श्रीखण्डपकेन निरस्तशक जिनक्रमाब्ज परि लेपयामि॥

शीतल चीनी, इलायची, अगरप्रियगू, लोग, कपूर, केसर आदि सुगधित पदार्थोसे मिले हुए चन्दनसे श्रीजिनेन्द्रदेवके चरण कमलो की पूजा करनी चाहिए उन चरणोके अगूठेपर चदन लगाना चाहिए।

सुचन्दनेन कर्पूर व्यामिश्रेण सुगधिना।
व्यालिपामो जिनस्याघ्रीन् निलिपाधीश्वरार्चितान्॥

चदन, केसर और कपूरसे मिले हुए सुगधित द्रव्यसे भगवान् के चरण कमलोका लेप करना चाहिए।

काश्मीर कर्पूर सुगन्धितेन सुगधघनसार विलेपनेन।
पादाब्ययुग्म हि विलेपयामि भक्त्या जिनस्य करुणायुतस्य॥
—जिनसहिता

अर्थ—केसर, कपूर, सुगधित चन्दन, आदि द्रव्योसे मैं करुणसागर भगवान् जिनेन्द्रदेवके दोनो चरण कमलो का लेप करता हू।

कप्पूर कुकुमायरु तलक्कमिस्सेण चदण रसेण।
परवहल परिमलामलिपामो जिसस्स चरण॥

अर्थ—कपूर, केसर, चन्दन आदि सुगन्धित द्रव्योके रससे भगवान् जिनेन्द्रके चरण कमलोपर लेप कर उनका सुगन्धित करता हूँ।

पुरुष प्रातःकालमे चन्दन पूजा नही करता है वाकी की द्रव्योसे पूजा कर लेता है तो वह शास्त्रोमे कही हुई विधिका उल्लघन करता है। क्योकि अष्ट द्रव्योमे प्रात कालके समय चदन पूजा ही मुख्य मानी है जिस मनुष्यने मुख्य पूजा नही की उसकी अन्य पूजा गौण ही समझी जाएगी, तथा मुख्य पूजाके अभावमे पूजाकी विधि भी विपरीत समझी जाएगी। प्रात काल अभिषेक अवश्य किया जाता है तथा अभिषेकके वाद चन्दन पूजा मुख्य मानी जाती है। मुख्य विधिके विना गौण विधि नही हो सकती। भगवान्की प्रतिमाका शरीर महा पवित्र होता है इसलिए उसका स्पर्श भी महा पुण्यका कारण है। तथा पूजा करनेवालेके शरीर-को भी पवित्र कर देता है। तथा भगवान्के पवित्र शरीरका स्पर्श अभिषेक करने वा चन्दन पूजा करनेसे ही हो सकता है। इसीलिए प्रात कालमे सवसे पहले अभिपेक करनेका और चदन पूजाका विधान वतलाया है। विना अभिषेक अष्ट द्रव्यसे भी पूजा नही हो सकती। क्योकि अष्ट द्रव्यमे भी तो जल पूजा और चन्दन पूजा मुख्य है।

आचार्योका एक अभिप्राय यह भी है कि भगवान्का अभि-षेक करनेमे देखनेवालोके परिणाम अत्यन्त निर्मल और भक्तिसे परिपूर्ण हो जाते है। इसलिए ही पूजामे अभिपेक मुख्य माना है। पचकल्याणक महोत्सवमे जन्म समयके अभिषेकका माहात्म्य सर्वोत्कृष्ट माना गया है। अभिषेकके वाद चन्दन पूजा ही होती है। इसका भी कारण यह है कि भगवान्के चरणो पर चन्दन लगाये विना शास्त्रकारोने दर्शन करनेका भी निषेध लिखा है। इसलिए प्रात कालमे अभिषेक कर चन्दनसे पूजा अवश्य करनी चाहिये ॥१२६॥

अर्थ—भगवान् जिनेन्द्रदेवके दायी ओर दीपक रखना

चाहिए तथा दाई ओर ही भगवानका ध्यान करना चाहिए और चैत्योकी वदना भी दाई ओर बैठकर ही करना चाहिए ॥१२७॥

अर्थ—प्रात कालके समय जल चन्दन अक्षत पुष्पमाला नैवेद्य दीप धूप फल और अर्घ्य इन आठो द्रव्योसे भगवान जिनेन्द्रदेव की पूजा करनी चाहिए ॥१२८॥[1]

अर्थ—कमल चम्पा चमेली आदि पुष्पोको माला वनाकर उनसे भगवान्‌की पूजा करनी चाहिए। तथा पुष्पोंके अभावमे अक्षतोको केसरसे पीले कर और उन्हे पुष्प मानकर उनसे पूजा करनी चाहिए ॥१२९॥

अर्थ—पुष्पके दो टुकडे कभी नही करने चाहिए तथा कली को तोड़ना भी नही चाहिए। कलीके दो टुकडे नही करने चाहिए

---

१ प्रातरेव विधातव्या चन्दनपूजा जिनेशस्य ।
सकलकलिलहत्री स्वर्गसुखप्रदात्री च ॥

अर्थ—भगवान् जिनेन्द्रदेवकी प्रात.कालिक पूजा चन्दनसे ही करनी चाहिए। यह प्रात कालकी चदनपूजा समस्त पापोका नाश करने वाली है और स्वर्गो के सुख देने वाली है।

प्रातःकाले प्रकर्तव्य विलेपन जिनेशिनाम् ।
सुगधरसलेपेन भक्त्या पापहृय सदा ॥ —पूजादीपक

अर्थ—प्रात कालमे भक्तिपूर्वक सुगधित चदनके रससे भगवानके चरणोपर विलेपन करना चाहिए। यह चदन का विलेपन सदा पापोको नष्ट करनेवाला है।

स्नपनान्तर प्रोक्त गधलेप जिनेशिनाम् ॥

अर्थ—अभिषेकके बाद भगवानके चरणोपर चन्दनका लेप अवश्य करना चाहिए।

चम्पा कमल आदिकी कलीके दो टुकडे करनेसे यति हत्याके समान दोष होता है। पूजापर चढानेके लिये ही यह प्रकरण है ॥१३०॥

अर्थ—जो पुष्प हाथसे गिर गया हो, पृथ्वी पर गिर पडा हो, पैरसे छू गया हो, मस्तकपर धारण कर लिया गया हो, अपवित्र वस्त्रमे रक्खा गया हो, दुष्ट मनुष्योके द्वारा स्पर्श किया गया हो, घनसे छिन्न-भिन्न किया हो और काटोसे दूषित हो, ऐसे पुष्पोका त्याग कर देना चाहिए अर्थात् भगवान्‌की पूजा करनेमे ऐसे पुष्प नही चढाना चाहिए ऐसा गणधरादि विद्वान् पुरुपोने कहा है ॥१३१॥

अर्थ—स्पृश्य शूद्रके हाथसे लाये हुये पुष्प ग्राह्य है तथा अस्पश्य शूद्रके हाथसे लाये हुये पुष्प त्याज्य है। पुष्प भगवान्‌के चरणो पर वडी भक्तिसे चढाना चाहिए परन्तु दुष्ट जनोके हाथ से लगाये हुए पुष्प कभी नही चढाने चाहिए ॥१३२॥

अर्थ—भगवान् जिनेन्द्रदेवका अभिषेक करनेके लिये सुगमता से दूधकी प्राप्ति हो जाय इसके लिये गायका रखना या जिनालयमे गायको दान देना दोषाधायक नही है। इसी प्रकार पूजामे सुगमतासे पुष्पोकी प्राप्तिके लिए बाग बगीचा बनवानेमे भी दोष नही है। पूजाके लिये सुगमतासे जल मिलता रहे इसके लिए कुआ बनवानेमे भी अत्यन्त दोष नही होता है। भावार्थ— यद्यपि जैन शास्त्रोमे कुआ खुदवानेका तथा बगीचा लगवानेका निषेध है इसी प्रकार गायको दान देनेका भी निषेध है, क्योंकि इन सब कामोमे हिंसा अवश्य और अधिकताके साथ होती है। परन्तु यहा पर जो इसका विधान लिखा है वह केवल सुगमताके साथ भगवान्‌की पूजा सदा होती रहनेके लिये लिखा है। उद्देश्य भिन्न-भिन्न होनेसे एक ही क्रियासे पुण्य पाप दोनो हो

सकते है। केवल खा-पीकर मस्त होनेके लिये भोजन वनाना पाप है। परन्तु मुनियोको दान देनेके लिए भोजन बनाना पुण्य-का कारण है। इसी प्रकार मृतकको वेतरणी नदी पार कर देने के लिए गाय का दान मिथ्यात्व वा पाप है, परन्तु भगवान्का अभिषेक सुगमताके साथ सदा होते रहनेके लिए गायका दान देना पुण्यका कारण है। इसी प्रकार कुआ खुदवाने और बगीचा लगाने मे अधिक हिसा होती है, परन्तु भगवान्की पूजा करने-के लिए कुआ बगीची बनवाना पुण्यका ही कारण माना जाता है जिस प्रकार पूजा करनेमे भी हिसा होती है, परन्तु इन कामो-के करनेमे अनेक जीवोको महापुण्यका बध होता है और इसी-लिए भव्य जीव बडो भक्तिसे इन कामोको करते है इसोप्रकार जिनालयमे गायका दान देना वा जिनालयके लिए कुआ वगीची बनवाना पुण्यका ही कारण है। पुण्य पाप भावोसे होता है तथा मिथ्यात्व और सम्यक्त्व भी भावोसे ही होता है। इन सब वातोको समझकर मोक्षके कारणभूत पुण्यकार्य सदा करते रहना चाहिए॥१३३॥

अर्थ—शुद्ध जल, इक्षुरस, घो, दूध, दही, आम्ररस सर्वोपधि और कल्क चूर्ण आदिसे भगवान् जिनेन्द्रदेवका अभिषेक करना चाहिए और वह भी वडी भक्ति तथा भावपूर्वक करना चाहिए॥१३४॥

अर्थ—जो भगवान्की पूजा करनेके बाद वच रहा है और जिसपर भ्रमर आरहे है ऐसे चन्दनसे पूजा करनेवालेको भगवान की पूजा करनेके लिए अपने शरोरको चर्चित करना चाहिए। भावार्थ—अभिषेक वाद भगवान्के चरणोपर चदन लगाना चाहिए और आगे अष्ट द्रव्यसे पूजा करनेके लिए उस वचे हुए चन्दनसे फिर दुवारा तिलक लगाना चाहिए॥१३५॥

अर्थ—भगवान् जिनेन्द्रदेवकी पूजा इक्कीस प्रकारसे का। जाती है। आगे उन्हीको बतलाते है। पञ्चामृताभिषेक करना चरणोपर चन्दन लगाना २ जिनालयको सुशोभित करना ३ भगवान्‌के चरणोपर पुष्प चढाना ४ वास पूजा करना ५ धूपसे पूजा करना ६ दीपकसे पूजा करना ७ अक्षतोसे पूजा करना ८ ताम्बूल पत्रसे पूजा करना ९ सुपारियोसे पूजा करना १० नैवेद्यसे पूजा करना ११ जलसे पूजा करना १२ फलोसे पूजा करना १३ शास्त्र पूजामे वस्त्रसे पूजा करना १४ चमर ढुलाना १५छत्र फिराना १६वाजे वजाना १७भगवान्‌की स्तुतिको गाकर कहना १८ भगवान्‌के सामने नृत्य करना १९ साथिया करना २० और भण्डारमे द्रव्य देना २१ इसप्रकार इक्कीस प्रकारकी विधिसे भगवान्‌की पूजा की जाती है। अथवा जिसको जो पसद हो उसीसे भाव पूर्वक भगवान्‌की पूजा करनी चाहिए। जैसे किसीको सितार वजाना पसन्द है तो उसको भगवान्‌के सामने ही सितार बजाना चाहिए। इसका भी कारण यह है कि द्रव्य क्षेत्र काल और भाव ये सबके सदा समान नही रहते इसीलिए अपनी २ योग्यताके अनुसार भगवान्‌की पूजा सदा करते रहना चाहिये। विना पूजाके अपना कोई समय व्यतीत नही करना चाहिए॥१३६,१३७॥

अर्थ—नवग्रह आदिकी शान्तिके लिए अथवा पापकर्मोकी शान्तिके लिए सफेद वस्त्रोको धारण कर सफेद मालासे जप करना चाहिए। विजय चाहनेके लिए श्याम रगकी मालासे जप करना चाहिए। कल्याणके लिए लाल रगकी मालासे जप करना चाहिए। भय दूर करनेके लिए हरे रगकी मालासे जप करना चाहिये। धनादिकी प्राप्तिके लिए पीले रगकी मालासे जप करना चाहिए। तथा अपने अभीष्ट सिद्धिके लिए पच वर्णकी मालासे जप करना चाहिए। यदि मालाके वदले उसी रगके

पुष्पोसे जप किया जाय तो उस कार्यकी सिद्धि बहुत शीघ्र हो जाती है। वस्त्र आसन आदि भी उस रगके होने चाहिए ॥१३८॥

अर्थ—खण्डित वस्त्र (वस्त्रका टुकडा) गला हुआ वस्त्र, फटा हुआ वस्त्र और मैला वस्त्र पहन कर दान पूजा जप होम और स्वाध्याय नही करना चाहिए। फटे पुराने गले सडे वस्त्र पहन कर दान पूजा आदि करनेसे वह दान पूजा आदि सब निष्फल हो जाता है ॥१३९॥

अर्थ—कोई कोई लोग यह कहते है कि पुष्पमाला, धूप, दीप, जल, फल आदि सचित्त पदार्थोसे भगवान्‌की पूजा नही करनी चाहिए। क्योकि सचित्त पदार्थोसे पूजा करनेमे सावद्य जन्य पाप (सचित्तके आरम्भसे उत्पन्न हुआ पाप) उत्पन्न होता है। उनके लिए आचार्य समझाते है कि भगवान्‌की पूजा करनेसे अनेक जन्मोके पाप नष्ट हो जाते है फिर क्या उसी पूजासे उसी पूजामे होनेवाला आरम्भ जनित वा सचित्त जन्य थोडा-सा पाप नष्ट नहीं होगा? अवश्य होगा। इसका भी कारण यह है कि:—॥१४०,१४१॥

अर्थ—जिस वायुसे पर्वतके समान बडे बडे हाथी उड जाते है, उस वायुके सामने अत्यन्त अल्प शक्तिको धारण करनेवाले डास मच्छर क्या टिक सकते है? कभी नही। उसीप्रकार जिस पूजासे जन्म जन्मान्तरके समस्त पाप नष्ट हो जाते है उसी पूजासे क्या उसी पूजाके विधि विधानमे होनेवाली बहुत ही थोडी हिंसा नष्ट नही हो सकती? अवश्य होती है। इसमे किसी प्रकारका सदेह नही है। विष भक्षण करनेसे प्राणियोके प्राण नष्ट हो जाते है परन्तु वही विष यदि सोठ मिरच पीपल आदि औषधियोके साथ मिलाकर दिया जाय तो उसीसे अनेक रोग

है। आव्हान आदि सब विधि उनकी मुद्रा पूर्वकही करनी चाहिए उसीसे यथार्थ फलकी सिद्धि होती है। * ॥१४७,१४०॥

---

* पूजा करनेके पहले आह्वान स्थापन सन्निधिकरण अवश्य करना चाहिए। जो लोग आह्वान नही करते है वे गहरी भूल करते हे। ऐसे लोग कहते है कि जब भगवानकी प्रतिमा सामने विराजमान है तब फिर आह्वान न करनेकी क्या आवश्यकता है परन्तु ऐसे लोग आह्वानका अर्थ नही समझते हैं। जैन शास्त्रो मे एक स्थापना निपेक्ष माना है। साकार वा निराकर पदार्थमे किसीके गुणका आरोपण करना स्थापना निपेक्ष है। जैसे सामने की विराजमान प्रतिमामे किसी तीर्थंकरकी स्थापना है परन्तु आह्वान स्थापनमे जो स्थापन है वह स्थापना निपेक्ष नही है। वह तो पूजाका एक अग है। जिसप्रकार किसी वडे वा छोटे आदमी को वुलाते है और वह वुलाया हुआ जब सामने आता है तव उसके आदर सत्कारके लिए कहा जाता है कि आइये साहब अच्छे तो हो आइये यहा वैठिये। इसप्रकार कहना आदरसत्कारका एक अग है। उसी प्रकार आह्वान स्थापन सन्निधिकरण भी पूजा वा आदर सत्कारके अग हैं। यदि वुलानेवाला मनुष्य आये हुए मनुष्यसे 'आइये यहा वैठिये' इत्यादि वचन न कहे तो वह आया हुआ मनुष्य अपना अनादर समझता है उसी प्रकार यदि पूजाके पहले आह्वान स्थापन न किया जाय तो वह भी एक प्रकारका भगवानका अनादर समझना चाहिए। आह्वान स्थापन का अर्थ भी 'आइये यहा विराजिये' यही होता है और इसी-लिए वह पूजाका अग माना जाता है। जितनी पूजा हैं उन सबमें आह्वान स्थापन है इसलिए पूजामें आह्वान स्थापन न करना पूजा शास्त्रके विपरीत चलना है।

आह्वान स्थापनमें जो स्थापना है उसका अर्थ एक क्षेत्रमे

अर्थ—जो स्त्रिया सती है शीलव्रतको पालन करने वाली हैं विनय आदि गुणोको धारण करती है जो सम्यग्दर्शन से सुशोभित है और जिनका चित्त अत्यन्त चचल नही है अर्थात् जो अपने चित्तको भगवानके स्वरूपमे स्थिर रख सकती है ऐसी स्त्रिया स्नानकर शरीर पर चन्दन लगाकर सफेद धुले हुए वस्त्र पहनकर और सोलह-आभरण पहनकर भगवान जिनेन्द्रदेवकी पूजा कर सकती है। भावार्थ – स्त्रियोको नित्य नैमित्तिक दोनो प्रकारकी पूजा करनेका अधिकार है। जिस प्रकार पुरुप शुद्ध होकर शुद्ध वस्त्र धारणकर विधिपूर्वक अभिषेक पूजा आदि क्रियाये करते है उसी प्रकार स्त्रियोको भी सर्वांग शुद्ध होकर (मस्तक परसे स्नानकर) शुद्ध वस्त्रोको धारण कर विधि पूर्वक पूजा व अभिषेक करना चाहिए। मुनियोको आहार देना और भगवानकी पूजा करना दोनो ही श्रावकके मुख्य कर्म हैं इसलिए ये दोनो कार्य श्रावक श्राविका दोनोके लिए समान है।

बहुतसे लोग स्त्रियोके लिए भगवानका अभिषेक करनेका निषेध करते हैं उन्हे यह समझ लेना चाहिए कि किसी भी शास्त्र मे स्त्रियोको भगवानका अभिषेक करनेका निषेध नही है। अनेक

दूसरे क्षेत्रमे विराजमान करना है जैसा कि लिखा है 'क्षेत्रात्क्षेत्रांतर द्रव्य स्थापना सा निगद्यते' अर्थात् किसी द्रव्यको एक क्षेत्रसे दूसरे क्षेत्रमे स्थापन करना स्थापना है। पूजाके समय भगवानको अपने हृदयमे विराजमान किया जाता है यही उनका क्षेत्रान्तर स्थापन है। इसलिए पूजाके समय आह्वान स्थापन अवश्य करना चाहिए। जो लोग आह्वान स्थापनको स्थापना निपेक्ष समझते हैं। वे भूलते हैं उन्हे समझ लेना चाहिए कि इन पचम कालमें चावल आदि अतदाकार पदार्थोमे स्थापना निपेक्षका निषेध है।

शास्त्रोमे स्त्रियोके द्वारा भगवानके अभिषेक करनेके उदाहरण मिलते हैं परन्तु निषेध किसीमें नही मिलता तथा किसी भी शास्त्रमे स्त्रियोके द्वारा किए गए अभिषेकको बुरा भी नही बतलाया है। लोकाचारमें भी अनेक देशोमे स्त्रिया अभिषेक करती है तथा अनेक देशोमे नही भी करती हैं। परन्तु न करने से निषेध सिद्ध नही हो जाता। शास्त्रोमे स्त्रियोको पूर्ण पूजन करने का विधान बतलाया है। उसमे अभिषेक भी आ जाता है। हा उन्हे अपनी शुद्धिका पूर्ण ध्यान रखना चाहिए ॥१४९, १५०॥

अर्थ—वढई, कारीगर नाई चितेरा सिलावट सूत्रधार शिल्पकार पेशगार दरजी माली नट गवैया, भाट चारण तबलची, सारगीवाला सेवक सुनार बीध्या सारथी प्रतीहार ये अठारह जातिके शूद्र स्पृश्य शूद्र कहलाते हैं। स्पृश्य शूद्रोके कारु अकारु के भेदसे दो भेद है जिनके कारीगरीकी जीविका है ऐसी जातिया कारु स्पृश्य शूद्र कहलाती है। जिनके कारीगरीकी जीविका नही है तथापि जिनकी जाति शूद्र है उनको अगारु कहते है जैसे धोबी लुहार आदि कगारु शूद्र है। इनमे कितनी ही जातिया स्पृश्य होने पर भी अपृश्य शूद्रोके समान है। भगी चमार आदि अस्पृश्य शूद्र कहलाते है। जिनके स्पर्श करनेसे स्नान करना पडता है और उसकी शुद्धिके लिए आचमन करना आदि क्रियाये करनी पडती है मुनिराजोको भी जिनका स्पर्श हो जानेपर दड स्नान करना पड़ता है मत्रस्नान पूर्वक उपवास करना पडता है। इसप्रकार प्रायश्चित्त करना पडता है उनको अस्पृश्य शूद्र कहते है। अस्पृश्य शूद्रके द्वारा स्पर्श किया हुआ पदार्थ भी ग्रहण करने योग्य नही होता है। यदि ऐसा पदार्थ ग्रहण करनेमे आजाय तो उसका प्रायश्चित लेना पड़ता है। स्पृश्य शूद्र जातिमे भी जो अस्पृश्य शूद्रोके समान है उनको भी श्रीजिनमन्दिर मे प्रवेश

करने का अधिकार नही है । स्पृश्य शूद्र जिनमन्दिरमें प्रवेश कर सकता है सफेदी मरम्मत आदि कार्य कर सकता है। परन्तु भगवानके श्रीमण्डपमें प्रवेश करनेंका उसको भी अधिकार नही है ।

गृहस्थ अपने घरके कामोमे स्पृश्य शूद्रोको लगा सकता है क्योकि वर्तन माजना लीपना पोतना धोती धोना आदि अनेक सेवाके कार्य शूद्रके ही आधीन होते हैं । भोजनके कार्योमे शूद्रोके कोई अधिकार नही है ।।१५१,१५२,१५३,१५४।।

अर्थ—इसप्रकार आगमकी आज्ञानुसार द्रव्यक्षेत्र पात्र आदिकी शुद्धिका पूर्ण विचार रखना चाहिए । द्रव्यक्षेत्र काल भावपात्र आदिको शुद्धकर अपनें शरीर वा भावोकी शुद्धि करनी चाहिए । तदनन्तर अन्य समस्त सामग्री को शुद्धि करना चाहिए । इस प्रकार वाह्य आभ्यान्तर सब प्रकारकी शुद्धियोको पूर्णकर जो पुरुष भक्ति पूर्वक भगवानकी पूजा करता है वह मनुष्य अपनें अभीष्ट पदार्थोंकी सिद्धिको अवश्य प्राप्त होता है । भावार्थ— क्षेत्रकी शुद्धि गोमय व मिट्टीसे होती है शरीरकी शुद्धि जल स्थान मत्र स्नान और आचमन आदिसे होती है। मनके राग द्वेष दूर करनेसे भावोकी शुद्धि होती है तथा मन्त्रोसे भी भावो की शुद्धि होती है । सामग्रोकी शुद्धि जलसे प्रक्षालन करनें और मत्रोसे होती है इसप्रकार शास्त्रानुकूल सर्वांग शुद्धिकर यज्ञो-पवीत आदि सस्कारोसे सुशोभित ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्योको भगवान जिनेन्द्रदेवको पूजा व अभिषेक करना चाहिए ।।१५६।।

अर्थ—जो भव्य जीव ईर्ष्या मत्सर आदि दुष्टभावोसे रहित होकर तीनो समय भगवान जिनेन्द्रदेवकी पूजा करता है। वह जोव सौधर्मादिक स्वर्गोंमे इन्द्र आदि उत्तमदेव होता है । जो भव्य जीव निर्मल परिणामोंसे एक वार भी जिनेन्द्र देवकी

प्रतिमाका पूजन करता है वह जीव अपने समस्त पापोको नष्ट कर इन्द्रादिक उत्तम पदार्थोको प्राप्त होता है। भावार्थ—प्रातःकाल मध्याह्नकाल और सायंकाल तीनो समय भगवानकी पूजाकी जाती है। भक्ति पूर्वक भगवानकी पूजा करनेसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है और अनुक्रमसे मोक्षकी प्राप्ति होती है॥१५७-१५८॥

अर्थ—जो भव्य जीव प्रेम वा भक्ति पूर्वक समस्त पापोको नाश करनेवाले भगवान जिनेन्द्रदेवकी प्रतिमाका पूजन करता है वह देवोके द्वारा पूजा जाता है तथा मरकर फिर उत्तम मनुष्य होता है। भावार्थ—जिनप्रतिमाको पूजा करनेवाला मर कर इन्द्रादिक पदको प्राप्त होता है और फिर वहासे आकर उत्तम मनुष्य होकर मुक्त होता है॥१५९॥

अर्थ—धर्मपत्नी सहित रहनेवाले गृहस्थोको आचार्योंने वह पूजा आठ प्रकार बतलाई है। जल चन्दन अक्षत पुष्प नैवेद्य दीप धूप फल इन आठ द्रव्योसे होनेवाली पूजा आठ प्रकारकी कही जाती है। यह आठ प्रकारकी पूजा जन्म मरण रूप ससार का नाश करने वाली है॥१६०॥

अर्थ—जो भव्य जीव जल इक्षुरस दूध दही घी सर्वोषधि आदिसे भगवान जिनेन्द्रदेवकी प्रतिमाका पचामृताभिषेक करता है उसके शरीरसे मनसे और अकस्मात् होने वाले सब तरहके सताप अवश्य नष्ट हो जाते हैं॥१६१॥

अर्थ—जो भव्यजीव प्रतिहार्य आदि अनेक शोभाओसे सुशोभित भगवान जिनेन्द्रदेवकी प्रतिमाके सामने भृगार नालसे (झारीसे) तीनवार जलकी धारा देता है वह पुरुष महा पुण्यवान् समझा जाता है और उसके जन्ममरण बुढापा आदिके

समस्त दुःख अनुक्रमसे नष्ट हो जाते है तथा थोडे ही भवोमे उसकी पापरूपी धूलि अवश्य ही शात हो जाती है। भावार्थ—भगवान जिनेन्द्रदेवकी प्रतिमाके सामने झारीकी टोटीसे तीनबार जलकी धारा देनी चाहिये। यही जल पूजा कहलाती है जलधारा झारीसे ही देनी चाहिये कटोरी आदिसे नहीं ॥१६२॥

अर्थ—चन्दनसे भगवान् जिनेन्द्रदेवकी पूजा करने से जो पुण्य होता है उससे यह जीव जन्म २ मे अत्यन्त सुगंधित शरीर प्राप्त करता है उस शरीरकी सुगधितसे दशो दिशाये सुगधित हो जाती है। भावार्थ—भगवान जिनेन्द्रदेवके चरण कमलोके अगूठे पर अनामिका उगली मे चन्दन लगाना चन्दन पूजा कहलाती है। सबसे छोटी उगलीके पासकी उगलीको अनामिका कहते है ॥१६३,१६४॥

अर्थ—सफेद सुगधित और शुभशालि धान्योसे उत्पन्न हुए अखड तन्दुलोसे भगवान जिनेन्द्रदेवके चरण कमलोकी पूजा करनेवाला मोक्षरूपी अक्षय लक्ष्मीको प्राप्त होता है। भावार्थ—भगवानकी प्रतिमाके सामने चावलोके पुज करनेसे अक्षत पूजा कही जाती है। वे चावलोके पुन्ज अगूठेको ऊपर कर बधी हुई मुट्ठीसे रखने चाहिए साथ मे मन्त्र भी पढना चाहिये। रकाबीसे अक्षत नही चढाना चाहिये ॥१६५॥

अर्थ—जो भव्य जीव पुष्पोसे भगवान जिनेन्द्रदेवकी पूजा करता है। वह स्वर्गलोकके इन्द्रको देवियोके मध्यमे बैठा हुआ अनेक देवियोके सुन्दर नेत्रोके द्वारा सदा पूजा जाता है। भावार्थ—वह इन्द्र होता है और अनेक देवागनाये उसकी सेवा करती है पुष्प भगवानकी प्रतिमाके चरणोपर चढाये जाते है। पुष्प दोनो हाथोकी अजलिसे चढाना चाहिये। इसीको पुष्प पूजा कहते हैं ॥१६६॥

अर्थ—जो भव्यजीव पकाये हुए अनेक प्रकारके नैवेद्यसे भगवान जिनेन्द्रदेवकी प्रति दिन पूजा करता है वह पाचो इन्द्रियोसे उत्पन्न हुए महासुखोका अनुभव करता है। भावार्थ-चावलोके भातको अन्न कहते है। किसी अच्छे थालमे नैवेद्यको रखकर तथा दोनो हाथोसे उस थालको पकडकर भगवानके सामने आरती उतारनेके समान उस थालको फिराकर सामने रख देना चाहिये हाथ या कटोरीसे नैवेद्य नही चढाना चाहिये ॥१६७॥

अर्थ—जो भव्य जीव रत्न घी वा कपूरके दीपकोसे भगवान जिनेन्द्रदेवके चरण कमलोकी आरती उतारता है उस पुरुषकी काति चन्द्रमाके समान निर्मल हो जाती है। भावार्थ—दीपपूजा दीपकसे ही होती है। रगे हुए चटकसे नही। रगे हुए चटकसे भगवानका शरीर दैदीप्यमान नही होता। दीपकसे आरती उतारी जाती है। इसीलिए परिणामोकी विशुद्धि जो आरतीसे होती है वह रगे चटकसे नही हो सकती। दोनो हाथोसे दीपक का थाल लेकर दाई ओरसे वाई ओर घुमाकर भगवानके सामने वार-वार दैदीप्यमान करनेको आरती कहते है। इसीको दीप-पूजा कहते है ॥१६८॥

अर्थ—जो भव्य जीव कृष्णागुरु चन्दन आदि सुगंधित द्रव्योसे वनी हुई धूपसे भगवान जिनेन्द्रदेवके चरण कमलोकी पूजा करता है अग्निमे खेकर धूप चढाता है। वह पुरुष समस्त लोगोके नेत्रोका प्यारा हो जाता है। भावार्थ—धूपको अग्निमे खेकर उसका धूआ अपने दाये हाथसे भगवानकी ओर करना चाहिये इसीको धूपपूजा कहते है। धूप थालमे नही चढाई जाती किंतु अग्निमे ही खेई जाती है।

अर्थ—जो भव्य जीव आम, नारगी, नीबू, केला, आदि वृक्षोसे उत्पन्न होनेवाले फलोसे भगवान सर्वज्ञ देवकी पूजा

करता है वह पुरुष अपनी इच्छाके अनुसार फलोको प्राप्त होता है। भावार्थ–जिन फलोसे इन्द्रिय और मनको सन्तोष हो ऐसे हरे वा सूखे फल चढाना चाहिये। फल देखनेमे सुन्दर और मनोहर होने चाहिये। गोला या बादामकी मिगी फल नहीं कहलाते किंतु नैवेद्य कहलाते है। इसलिए गोलाके बदले नारियल चढाना चाहिये बादाम भी फोडकर नही चढाना चाहिये। रकाबीमे फल रखकर बडी विनय और भक्तिसे भगवानके सामने रखने चाहिये। आठो द्रव्योमे फल सर्वोत्कृष्ट द्रव्य है ॥१७०॥

अर्थ—जल, चन्दन, अक्षत, अत्यन्त सुगन्धित पुष्प आदि समस्त द्रव्योके समुच्चय रूप अर्घसे भगवान जिनेन्द्रदेवके सामने दिव्य पुष्पाजलिको समर्पण करता हुआ पुण्यवान पुरुष मोक्ष फलको प्राप्त होता है। भावार्थ–फल पूजाके बाद समस्त द्रव्यो से मिला हुआ अर्घ चढाना चाहिये। अर्घमें आठो द्रव्योके सिवाय दूब सफेद सरसो साथिया नद्यावर्त दही पान आदि द्रव्य भी होते है अष्ट द्रव्योके साथ इन द्रव्योके मिलानेसे ही अर्घ सज्ञा होती है केवल अष्ट द्रव्योके मिलानेसे नही। अर्घमे दीपक जलाकर फिर उसको आरतीके समान उतारना चाहिये। अर्घ चढानेके बाद पुष्पाजलि अवश्य चढाना चाहिये। जो पुरुष अर्घ चढानेके बाद पुष्पाजलि नही चढाता वह पूजाके अनुक्रमको भूलता है। दोनो हाथोंको अजलीमे पुष्प रखकर पुष्प वृष्टिके समान भगवानपर क्षेपण करनेको पुष्पाजलि कहते हैं। पूजाकी पूर्णता पुष्पाजलिसे ही होती है। पुष्पाजलिके बाद झारीसे शाति धारा देनी चाहिये। शातिधारा समस्त सुखोको देनेवाली होती है ॥१७१॥

अर्थ—भगवानके सामने पुष्पांजलि चढानेसे महापुण्यकी

प्राप्ति होती है। तथा उस पुण्यसे यह मनुष्य अपने समस्त दु:खो की जलाजलि दे डालता है। भावार्थ—उसके समस्त दु:ख दूर हो जाते है ॥१७२॥

अर्थ—भव्य जीवोको नाम स्थापना द्रव्य और भाव इन चार निक्षेपोसे भगवान जिनेन्द्रदेवकी स्थापना करनी चाहिए और फिर पुण्यकी वृद्धि करनेके लिये भगवान जिनेन्द्रदेवकी पूजा करनी चाहिए। भावार्थ—विना स्थापना निक्षेपके भगवान की पूजा सदा नही हो सकती स्थापना निक्षेपकी विधि प्रतिष्ठा शास्त्रोसे जान लेना चाहिये ॥१७३॥

अर्थ—प्रतिष्ठा पाठोके अनुसार प्रतिष्ठा किये विना भगवान की प्रतिमा कभी पूज्य और वदनीय नही होती विना न्यास वा प्रतिष्ठाके वह प्रतिमा पत्थरके समान मानी जाती है। विना प्रतिष्ठाकी हुई प्रतिमासे प्राणियोको कभी भी सुखकी प्राप्ति नही हो सकती। भावार्थ—प्रतिष्ठा विधिसे प्रतिमामें अरहतके गुणो का आरोपण किया जाता है। विना गुण आरोपण किये पूज्यता नही आ सकती। इसलिये प्रतिष्ठित प्रतिमा ही पूज्य होती है। फोटो चित्र लेप आदिकी अप्रतिष्ठित प्रतिमाए कभी पूज्य नही होती ॥१७४॥

अर्थ—जिस किसी पदार्थमे किसी अन्य पदार्थके कोई गुण न हो केवल व्यवहार चलनेके लिये उसका वैसा ही नाम रख लिया जाय तो उसको नाम निक्षेप कहते है यह नाम निक्षेप करना लोगोकी इच्छानुसार होता है। जैसे किसी पुरुषमे इन्द्र के गुण न हो तो भी उसका नाम इन्द्र रख लिया जाय तो उसको नाम निक्षेप समझना चाहिये ॥१७५॥

अर्थ—साकार वा निराकर पत्थर आदिमे "यह वही है"

इस प्रकार निश्चय सङ्कल्पपूर्वक करनेको स्थापनानिक्षेप कहते है। भावार्थ—जिसकी स्थापना करनी हो उसीके आकारकी वस्तुमे स्थापना करना साकार स्थापना है जैसे अष्ट प्रातिहार्य सहित समचतुरस्र सस्थानकी मूर्ति बनाकर उसमे अरहंतदेवकी स्थापना करना अरहतके गुणोका आरोपण करना साकार स्थापना है तथा शतरजकी गोटोमे बादशाह आदिकी कल्पना करना निराकार स्थापना है। कलिकालमे निराकार स्थापना का निषेध है ॥१७६॥

अर्थ—जो पदार्थ आगामी गुणोके योग्य है उसको वतमान मे कहना द्रव्य निक्षेप कहलाता है। तथा वर्तमान समयमे जैसी उसकी पर्याय हो उसको वैसा ही कहना भाव निक्षेप कहलाता है जैसे राजपुत्रको राजा कहना अथवा क्षपकश्रेणीमे चढे हुए मुनिराजको अरहत कहना द्रव्य निक्षेप है तथा सिहासन पर विराजमानको अरहत कहना भाव निक्षेप है ॥१७७॥

अर्थ—इस प्रकार शुद्ध सम्यग्दर्शनको धारण करने वाले श्रावकोंको नाम स्थापना द्रव्य भाव इन चारो निक्षेपोसे स्थापना कर भाव पूर्वक अपनी शक्तिके अनुसार भगवान जिनेन्द्रदेव की पूजा करनी चाहिये ॥१७८॥

अर्थ—जो मुनिराज भगवान जिनेन्द्रदेवके गुणोंके समूहोमें तल्लीन हो रहे हैं ऐसे मुनिराजोको अपने भावोंसे ही भाव पूजा करनी चाहिये। क्योंकि भाव पूजा ही समस्त भावोको नाश करने वाली है। भावार्थ—मुनियोंके पास कुछ द्रव्य नही रहता इसलिये मुनियोंको भाव पूजा करनेका ही अधिकार है। परन्तु गृहस्थ लोग बिना द्रव्यके गृहस्थ नही कहला सकते इसीलिये ऐसे गृहस्थोंको द्रव्य पूजा करनेका ही अधिकार है। गृहस्थोंके परिणाम सर्वथा निर्मल नही होते इसलिये वे भाव पूजा कर नहीं सकते इसीलिये उनको भाव पूजा नहीं करनी चाहिये ॥१७९॥

अर्थ—भव्य जीवोको तीनो समय पूजा करनी चाहिये । यह पूजा पुण्यको वढाने वाली है और जन्म जन्मके किये हुए पापो के समूहको नाश कर देने वाली है ॥१८०॥

अर्थ—प्रातः कालके समय भगवानकी पूजा करनेसे पाप नष्ट हो जाते है मध्यान्ह कालके समय पूजा करनेसे लक्ष्मी प्राप्त होती है और सध्याकालके समय पूजा करनेसे मोक्षकी प्राप्ति होती है इस प्रकार भगवानको पूजा करनेसे निरन्तर आत्माका कल्याण होता रहता है ॥१८१॥

अर्थ—इस प्रकार इस दूसरे अध्यायमे जिन पूजाका वर्णन किया अव आगे इस तीसरे अध्यायमें समस्त सुखोको देने वाली गुरुकी उपासनाका वर्णन करते हैं ॥१८२॥

अर्थ—अपने मनोवाञ्छित पदार्थ सिद्ध करनेके लिए तथा इस लोक सम्बन्धी समस्त सशय रूपी अधकारको नाश करनेके लिये और परलोकमें सुख प्राप्त करनेके लिए गुरुको सेवा सदा करते रहना चाहिये ॥१८३॥

अर्थ—उत्तम मध्यम जघन्य कैसे ही मनुष्य हो परन्तु विना गुरुके वे मनुष्य नहीं कहलाते । इसलिये प्रत्येक मनुष्यको सर्वोत्कृष्ट गुरुकी सेवा अवश्य करनी चाहिये ॥१८४॥

अर्थ—ये संसारके मनुष्य सदा शुभ अशुभ कर्मोंके करने में ही तल्लीन रहते हैं परन्तु वे ही मनुष्य गुरुके उपदेशके अनु-सार आचरण पालन करनेसे गुणोंसे भी गुरु हो जाते हैं ॥१८५॥

अर्थ—जिन्होंने धर्मोपदेश रूपी अमृतसे अपने मनका सब मैल धो डाला है, जो सम्यग्दर्शन रूपी रत्नोंका आभूषण पहने हुये हैं, सम्यग्ज्ञान ही जिनका श्रेष्ठ भोजन है, सम्यक् चारित्र-रूपी श्रेष्ठ वस्त्रसे जिनका शरीर ढका हुआ है, जिनकी बुद्धि

अत्यन्त निर्मल है, मोहनीय कर्मके उपशम रूपी हाथी पर सवार होनेके कारण जिनका अन्तःकरण अत्यन्त निर्मल है जो समस्त जीवोका हित चाहनेवाले है समस्त जीवोका कल्याण करनेवाले है, मिथ्यात्व रूपी महा दुष्कर्म पापको नाश करनेवाले है, जीवो-को जन्म मरण रूप ससारसे पार उतारनेवाले है, जिन्होने अन्तरग वहिरगके भेदसे चौबीसो प्रकारके परिग्रहका त्याग कर दिया है, जो जैन धर्मकी सदा प्रभावना किया करते है, जो चारो प्रकारके सघके नायक है, समस्त सघके आधार है मूल-मार्ग वा मोक्ष मार्गको साक्षात् दिखानेवाले है, जो शिष्य वर्गो-का सदा अनुग्रह किया करते है, पापरूपी ईन्धनके लिए जो अग्निके समान है जो पाचो इन्द्रियाके महाभोगोसे सदा विरक्त रहते है तीनो लोकोके समस्त जोव जिनको नमस्कार करते है जिनका शुद्ध आत्मा प्रमाद और मदसे सदा रहित है। जो भगवान जिनेन्द्रदेवकी आज्ञाका सर्वथा प्रतिपालन करते है जो अनेक शास्त्रोके पढानेमे समर्थ है तथा अनेक ग्रथोके पढनेमे चतुर है। इसप्रकार जो अनेक गुणरूपी श्रेष्ठ रत्नोके समुद्र है उनको गुरुराज वा सर्वोत्कृष्ट गुरु कहते है। ऐसे महा गुरु इस जन्ममरण रूप महा समुद्रमे पडे हुए भव्य जीवोको पार करनेके लिए नावके समान है। भावार्थ—यहापर गुरु शब्दसे धम गुरु समझना चाहिये। जो गुरु परम दिगम्बर है विषय कपायोसे सर्वथा रहित है ज्ञान ध्यानमे सदा लोन रहते है जो जैनधर्मकी वृद्धि करनेवाले है शिक्षा दोक्षा देनेके अधिकारी है ऐसे आचार्य परमेष्ठी गुरु कहलाते है। इनके सिवाय उपाध्याय और साधु परमेष्ठी भी गुरु कहलाते है। निर्वाण दीक्षा देनेके अधिकारी आचार्य होते हैं। वे ही गण सघ और शासनके अधिपति माने जाते है। परन्तु गृहस्थोकी दीक्षाका कार्य गृहस्थाचार्य करते है इसलिए गृहस्थाचाय भी गृहस्थगुरु माने जाते है ॥१८६,१८७, १८८, १८९, १९०, १९१, १९२॥

अर्थ—गुरुके विना इस संसारमे भव्य जीवोको जन्ममरण रूप संसारसे पार करदेने वाला अन्य कोई नही है तथा मोक्ष-मार्ग का उपदेश देनेवाला भी अन्य कोई नही है। यही समझ-कर सज्जन पुरुषोको श्री गुरुकी सेवा सदा करते रहना चाहिए ॥१९३॥

अर्थ—गुरु अनेक गुणोसे सुशोभित होते हैं इसलिए मन वचन कायसे तथा कृत कारित अनुमोदनासे गुरुका महा विनय सदा करते रहना चाहिए ॥१९४॥

अर्थ—मुनिराज सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र को धारण करनेवाले है इसलिए उनमे रहनेवाले सम्यग्दर्शनका विनय करना चाहिये सम्यग्ज्ञानका विनय करना चाहिए और सम्यक् चारित्रका विनय करना चाहिए तथा उन मुनिराजका उपचार रूप विनय करना चाहिए। इसप्रकार धर्मरूप श्रेष्ठ बुद्धिको धारण कर विद्वान मुनियोका विनय चार प्रकारसे करना चाहिए। विनय करनेसे गुरुका हृदय रात दिन प्रसन्न रहता है ॥१९५॥

अर्थ—जो बुद्धिमान् मनुष्य गुरुकी विनय करते है उनकी सेवा देव लोग भी करते है तथा उनके समस्त शत्रु उनके दास हो जाते है और अनेक प्रकारकी विद्याए सिद्ध हो जाती हैं ॥१९६॥

अर्थ—इसप्रकार गुरुकी उपासनाका स्वरूप कहा। अब आगे भव्य जीवोको सुख प्राप्त करनेके लिए अपना अभीष्ट स्वाध्याय संयम तप और दानका स्वरूप कहते हैं ॥१९७॥

अर्थ—स्वाध्याय भव्य जीवोको ज्ञान देनेवाला है। वह स्वाध्याय वाचना पृच्छना आम्नाय अनुप्रेक्षा और धर्मोपदेशके भेदसे पाच प्रकारका कहा जाता है ॥१९८॥

अर्थ—वाचना पढनेको वा पढाने को कहते है वह वाचना रीति वाक्य अर्थ और सन्दर्भ रचना सहित होती है। रीति वाक्य अर्थ और सन्दर्भसे रहित वाचना कभी नही होती। अपना सदेह दूर करने के लिए, गुरुके समीप जाकर उनसे वस्तुका स्वरूप पूछना पृच्छना है शुद्धतापूर्वक कठस्थ करना पढ़ना आम्नाय है। वार-वार चितवन करना अनुप्रेक्षा है और धर्मका उपदेश देना धर्मोपदेश है। इसप्रकार स्वाध्यायके पाच भेद कहे जाते है ॥१९९,२००॥

सयम दो प्रकार का है एक इन्द्रिय सयम और दूसरा प्राणिसयम। इन्द्रियोके विषयोका त्याग कर देना इन्द्रिय सयम है। तथा छह कायके जीवोकी रक्षा करना दया पालन करना प्राणि सयम है ॥२०१॥

अर्थ—इन्द्रिय सयमको पालन करनेवाला भव्य जीव सब जीवोका प्रिय हो जाता है, तथा इन्द्र नरेन्द्र आदि अनेक पदोका भोगनेवाला होता है और ससार समुद्रसे पार हो जाता है ॥२०२॥

अर्थ—वनका मदोन्मत्त हाथी हथिनीके स्पर्शका लोलुपी होकर वन्धन ताडन और परवशताके अनेक दुखोको प्राप्त होता है ॥२०३॥

अर्थ—अगाध जलसे भरे हुए नदी नद और सरोवरमे रहने वाली मछली केवल रसना इन्द्रियके वशीभूत अपना गला छिदवाती है ॥२०४॥

अर्थ—सूर्यके अस्त होजाने पर कमल मे वैठा हुआ मूर्ख भोरा घ्राण इन्द्रियके वशीभूत होकर उसी कमल मे मर जाता है ॥२०५॥

अर्थ—अत्यन्त मूर्खताको धारण करनेवाला पतग नेत्र इन्द्रियके वशीभूत होकर दीपककी लो मे पड़कर वही पर मर जाता है ॥२०६॥

अर्थ—हिरण कर्ण इन्द्रियके विषयके आधीन होकर व्याधके वाणसे मारा जाता है और उसी क्षणमे वही पर मर जाता है ॥२०७॥

अर्थ—अनेक जीव एक एक इन्द्रियके वशीभूत होनेके कारण अनेक प्रकारके दुखोको प्राप्त होते है फिर भला जो जीव पाचो इन्द्रियोके वशीभूत हैं वे भव भवमे क्यो न दुखी होगे ? अवश्य होगे ॥२०८॥

अर्थ—मनरूपी राजाकी प्रेरणासे समस्त इन्द्रियरूपी दास विचार रहित होकर अपने अपने कार्यों मे लगे रहते हैं ॥२०९॥

अर्थ—जिस समय यह मन अपने इन्द्रियरूपी सेवकोसे रहित हो जाता है उस समय यह लगड़ेके समान होजाता है तथा उस समय अपने ही स्थान पर रहकर अनेक प्रकारके सकल्प विकल्पोका जाल बनाया करता है। भावार्थ—अकेला मन अनेक प्रकारके विकल्प उत्पन्न किया करता है ॥२१०॥

अर्थ—मनको निरोध करलेनेसे पहले जन्मोके किये हुए समस्त पाप नष्ट होजाते है और फिर मनुष्य वा मनुष्यका मन इन्द्रियोके विषयमे प्रवृत्त नही होता है। इस प्रकार यह मनुष्य इस श्रेष्ठ धर्मको जीतकर धारण कर लेता है ॥२११॥

अर्थ—जिसका मन चचल नही होता स्थिर रहता है उसके लिये देव अनेक वर प्रदान कर देते है। जिनका मन निश्चल है उनके दान पूजा उपवास आदि सफल हो जाते हैं ॥२१२॥

अर्थ—जो पुरुष पाचो इन्द्रियोको अपने वश कर लेता है वह बुद्धिमान् पुरुष कठिनसे कठिन चारित्र को पालन करनेमें भी सदा समर्थ रहता है तथा फिर वह रात दिन उसीको पालन करने की चेष्टा किया करता है ॥२१३॥

अर्थ—जहा पर पाचप्रकारके स्थावर जीवोंकी रक्षा बड़े प्रयत्नसे की जाती है, दो इन्द्रिय तेइन्द्रिय चौइन्द्रिय आदि विकलत्रय जीवोकी रक्षा वडे प्रयत्नसे की जाती है, तथा सैनी असैनीके भेदसे दोनो प्रकारके पचेन्द्रिय जीवोकी रक्षा बड़े प्रयत्नसे की जाती है और इन सब जीवोके जो पर्याप्त और अपर्याप्तके भेदसे दो प्रकारके भेद है उन सवकी रक्षा वड़े प्रयत्नसे की जाती है उसको प्राणि सयम कहते हैं ॥२१४, २१५॥

अर्थ—जो मनुष्य अपने मनमें दया धारण कर समस्त प्राणियोकी हिसाका त्याग सदाके लिये कर देता है उसको बड़े भारी पुण्यकी प्राप्ति होती है तथा उसके पाप सब दूरसे ही नष्ट हो जाते है ॥२१६॥

अर्थ—जीवोकी रक्षा करनेसे हृदय करुणासे भरपूर हो जाता है फिर उस जीवको कभी दु ख नही होता तथा वह सदा सुखी ही वना रहता है ॥२१७॥

अर्थ—इस प्रकार चौथे अध्यायमें स्वाध्याय और संयमका स्वरूप कहा अव आगे तप और दान ज्ञान इन दोनोंका विधान कहते है ॥२१८॥

अर्थ—तपके दो भेद है एक वाह्य तप और दूसरा आभ्यतर तप। इन दोनो तपोमे से प्रत्येकके छह छह भेद हैं। ये सव बाहर

प्रकार के तप कर्मोंको क्षय करनेके लिए दावानल अग्निके समान हैं ॥२१९॥

अर्थ—छह प्रकारके बाह्य तपोंमे पहला तप अनशन वा उपवास है, दूसरा अवमोदर्य (कम भोजन करना) है, तीसरा वृत्तिपरिसंख्यान है, चौथा रसपरित्याग है, पाचवा विविक्तशय्यासन नामक परम तप है और छठा कायक्लेश नामका तप है। ये छहो प्रकारके तप सज्जनोके लिये अत्यन्त प्रिय हैं ॥२२०, २२१॥

अर्थ—प्रायश्चित, विनय, विशेषकर वैयावृत्य, स्वाध्याय व्युत्सर्ग और ध्यान यह छह प्रकारका तप अन्तरग तप कहलाता है ॥२२२॥

अर्थ—मुनिराज इन ऊपर लिखे हुए बारह प्रकारके तपश्चरणोको धारण कर घातिया कर्मोंको नाश कर डालते हैं। और केवली होकर मोक्षमे जा विराजमान होते हैं ॥१२३॥

अर्थ—गृहस्थके छह कर्मोंमे दान नामका कर्म महाकर्म कहलाता है। यह दान कर्म समस्त सुखोका खजाना है अनेक भोगोपभोगोका देनेवाला है और समस्त दु खोका नाश करनेवाला है। आगे इसी दानका स्वरूप कहते हैं ॥२२४॥

अर्थ—यह दान समस्त लोगोको वश करनेके लिये मुख्य कारण है यही दान अपने बडप्पनका बडे होनेका कारण है और अपनी कुल तथा जातिको प्रसिद्ध करनेवाला है ॥२२५॥

अर्थ—जैनशास्त्रोमे दानके चार भेद बतलाये हैं। आहारदान, ज्ञानदान, औषधदान और अभयदान। भावार्थ—ऊपर लिखे दानके चारो भेद पात्र दानके समझने चाहिये। पात्र दानके

सिवाय अन्वय दान करुणादान और समानदान ये तीन दानके भेद और समझना चाहिए[1] ॥२२६॥

अर्थ—आहार समस्त जीवोको उसी समय सुख देनेवाला है। इस आहारसे ही यह मनुष्य ध्यान अध्ययन आदि कर्मोके करनेमे समर्थ होता है ॥२२७॥

अर्थ—इन तीनो लोकोमे अन्नदानके समान अन्य कोई दान न हुआ है न है और न होगा। अन्नदानके सिवाय अन्य सब दान लोभके बढाने वाले है ॥२२८॥

अर्थ—आहार दान देनेमे राजा श्रीषेण प्रसिद्ध हुआ है। वह श्रीषेण राजा आहार दानके प्रभावमे अनेक सुखोको भोगकर अन्तमे समस्त जीवोको सुख देनेवाले शान्तिनाथ तीर्थकर हुये थे तथा वे पाचवे चक्रवर्ती भी थे ॥२२९॥

अर्थ—ज्ञानदान केवलज्ञानरूपी साम्राज्य लक्ष्मीका कारण है समस्त कर्मोको नाश करने वाला है और महापवित्र है। इसलिये वह ज्ञान दान किसी योग्य पात्रको अवश्य देना चाहिए ॥२३०॥

अर्थ—जो शिष्य विवेकी है विनयवान् है गुणभक्ति करनेमे तत्पर है और जो श्रेष्ठ व्रतोके पालन करनेमे निपुण है ऐसे

---

१. अपने पुत्रको अपनी समस्त सम्पत्ति देकर मुनि दीक्षा लेना अन्वयदान है। अपनी जातिके साधर्मी भाइयोको कन्या सुवर्ण वस्त्र वर्तन आहार आदि देना समान दान है। मुनि आर्यिका श्रावक श्राविका इन चारो प्रकारके पात्रोको आहार औषधि ज्ञान और वसतिका देना पात्रदान है। भगवान जिनेन्द्र-देव की पूजा, नित्य नैमित्तिक इद्रध्वज आदि समस्त पूजाये पात्र-दानमे ही समझना चाहिए। दीन दुखी असमर्थ प्राणियोको दयादृष्टिसे अन्न वस्त्र औषधि आदि देना करुणादान कहलाता है।

शिष्योको पुण्य प्राप्त करने के लिए सदा पढाते रहना चाहिए ॥२३१॥

अर्थ—दाता गुरु और शिष्य इन तीनोके मिलनेसे ही शास्त्रोका पठन पाठन बढता है। सो ठीक ही है क्योकि समस्त सामग्रीके मिलनेसे ही कार्यको सिद्धि होती है इसमे किसी प्रकार का सन्देह नही है ॥२३२॥

अर्थ—जो पुरुष कौडेशके समान सब तरह के सन्देहोसे रहित होकर शास्त्रोको पूजा और योग्य पात्रके लिये उन शास्त्रोका दान देता है वह कौडेशके समान ही पुन्यवान होकर तीनो लोको मे प्रशसनीय गिना जाता है ॥२३३॥

अर्थ—चतुर पुरुषोको सव प्रकारके रोगोका नाश करनेके लिये उत्तम मध्यम जघन्य इन तीनो प्रकारके पात्रोको विधि पूर्वक अनेक प्रकारकी औषधिया देनी चाहिए। औपध दान देनेसे अपने सव प्रकारके रोग नष्ट हो जाते है ॥२३४॥

अर्थ—जो दाता मुनि अर्जिका श्रावक श्राविका आदि पात्रो-को निंद्य अस्पृश्य (छूने अयोग्य) औषधिया देता है वह दाता भव भवमे नरकका पात्र होता है। भावार्थ—पात्रके लिये पवित्र और प्रासुक ओषधि ही देनो चाहिये। अपवित्र और अप्रासुक औपधि कभी नही देनी चाहिये ॥२३५॥

अर्थ—जो औषधि निर्दोष है, प्रासुक है, प्रशसनोय है अनिंद्य है भक्षण करने योग्य है म्लेच्छ आदि अस्पृश्य लोगोके द्वारा स्पर्श नही को गई है ऐसी ओषधि उत्तम पुरुषोको दान देनी चाहिये ॥२३६॥

अर्थ—अत्यन्त पवित्र ऐसी वृषभसेना नामको किसी सेठकी पुत्री औषधि दानके प्रभावसे उत्तम ऋद्धिको प्राप्त हुई थी ॥२३७॥

अर्थ—अभयदानके प्रभावसे यह मनुष्य निर्भय सयमी, चिरजीवी जगत भर को जीतने वाला यशस्वो और जिनेन्द्रिय हो जाता है ॥२३८॥

अर्थ—सम्यग्दर्शन व्रत शील और अनेक प्रकारके तप अभय दानसे ही सफल माने जाते है ॥२३९॥

अर्थ—इस अभयदानके प्रभावसे एक शूकरने उत्तम फल प्राप्त किया है । इसलिये श्रावकोको इन चारो प्रकारके दानोको छोडकर अन्य सव दानोका त्याग कर देना चाहिये ॥२४०॥

अर्थ—इस दानके प्रभावसे महा पुण्यकी प्राप्ति होती है अपने कुलकी प्रसिद्धि दानसे ही होती है । शील विवेक विनय सुख और सब प्रकारके कल्याण इस दानके ही प्रभाव से होते है । यही समझकर पुण्यवान् भव्य जीवोको सदा शुभ दान देते रहना चाहिये । इस दानके ही प्रभावसे भव्य जीवोको स्वर्गादिक के सुख प्राप्त होते है और अन्तमें मोक्षकी प्राप्ति होती है ॥२४१,२४२॥

अर्थ—भगवान जिनेन्द्रदेवने देवपूजा गुरुपास्ति स्वाध्याय सयम तप दान ये छह कम गृहस्थोके लिये आवश्यक कर्म वतलाये है । इन छहो कर्म रूप धर्मको पालन करता हुआ गृहस्थ चक्की उखली चूल बुहारी पानी और व्यापारसे भिन्न होने वाले पापोको बहुत शीघ्र नष्ट कर देता है ॥२४३॥

अर्थ—चक्की उखली चूल्हो बुहारी पानी और ये पाच गृहस्थोके आरम्भ जनित पाप कहलाते है तथा द्रव्य कमाना कमाकर इकट्ठा करना भी छठा पाप कहलाता है । गृहस्थके ये छहो पाप देवपूजा आदि छहो कर्मोसे नष्ट हो जाते है ॥२४४॥

अर्थ—देवपूजा गुरुपास्ति आदि छहो कर्म ज्ञानावरणादि समस्त कर्मोको नाश करनेवाले हैं । इन छहो कर्मोके पालन

करनेसे यह गृहस्थ उत्तम श्रावक कहलाता है और इन्हीं छह कर्मोसे रात दिन उत्पन्न होने वाले श्रावकके पाप सब नष्ट हो जाते हैं ॥२४५॥

अर्थ—देवपूजा आदि इन्हो छह कर्मोको पालन करनेसे इस मनुष्यका सम्यग्दर्शन निर्मल हो जाता है तथा इन्ही पट्कर्मो से यह मनुष्य अनेक प्रकारकी विभूतियोको धारण करनेवाले इस जैन धर्मका आराधक वन जाता है। भावार्थ—केवल जैनी के घर जन्म लेनेसे ही जैनी वा सम्यग्दृष्टि नही कहलाता किंतु देवपूजा आदि पट्कर्मोंको प्रतिदिन करनेसे ही जैनी और सम्यग्दृष्टी कहलाता है ॥२४६॥

अर्थ—इस प्रकार इस चौथे अध्यायमे सयम तप और दानका स्वरूप कहा अव आगे पाचवे अध्यायमे सम्यग्ज्ञानका स्वरूप कहते है ॥२४७॥

अर्थ—इस प्रकार मोक्षकी इच्छा करनेवाले भव्य जीवोको देवपूजा आदि छहो कर्मोके द्वारा अपनी आत्मामे निर्मल सम्यग्दर्शन धारण करना चाहिये। तदनन्तर आम्नाय (पठन पाठन) और युक्तियोके द्वारा उनको सम्यग्ज्ञानकी उपासना करनी चाहिए ॥२४८॥

अर्थ—यद्यपि सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान दोनो एक साथ एक ही कालमे प्रकट होते है तथापि उन दोनोका लक्षण अलग २ है। इसलिये वे दोनो भिन्न-भिन्न कहे जाते है और सम्यग्दर्शनके वाद अलग ही सम्यग्ज्ञानका आराधन किया जाता है ॥२४९॥

अर्थ—सम्यदर्शनके प्रगट होनेसे ही आत्माका ज्ञान सम्यग्ज्ञान कहलाता है। इसीलिये सम्यग्दर्शन कारण माना जाता

है और सम्यग्ज्ञान कार्य माना जाता है। तथा इसीलिये सम्य-ग्ज्ञानका आराधन सम्यग्दर्शनके अनन्तर आचार्योंने बतलाया है ॥२५०॥

अर्थ—जो ज्ञान भव्य जीवोको तीनो काल और तीनो जगत के समस्त पदार्थोंमे हेय और उपादेयका स्वरूप बतलाता है। उसीको सम्यग्ज्ञान कहते हैं। भावार्थ—ग्रहण करने योग्य और त्याग करने योग्य पदार्थोंको दिखलानेवाला ही सम्यग्ज्ञान कहलाता है ॥२५१॥

अर्थ—शब्द शुद्धि, अर्थ शुद्धि, शब्द अर्थ दोनोंकी शुद्धि, काल शुद्धि, विनय शुद्धि, उपधान शुद्धि (रसत्याग वा उपवास आदि धारण कर स्वाध्याय का प्रतिष्ठापन निष्ठापन करना आरम्भ वा समाप्ति करना अथवा जो पढा जाय उसे स्मरण रखना) मान वा आदर सत्कार पूर्वक पढना और अनिन्हव अर्थात् गुरुका नाम न छिपाना इन आठ प्रकार की शुद्धियोको रखकर सम्यग्ज्ञानको आराधना करनी चाहिये ॥२५२॥

अर्थ—उस सम्यग्दर्शनके चार भेद है। प्रथमानुयोग करणा-नुयोग चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग। इन चारो अनुयोगोकी वेद संज्ञा है। यह सज्ञा जिनागममे अनादिकालसे चली आ रही है। इनके सिवाय इस ससारमे अन्य कोई कल्पित वेद नही है ॥२५३॥

अर्थ—जिन ग्रथमे तीर्थकर चक्रवर्ती आदि उत्तम महा-पुरुपोके चरित्रोका वर्णन किया जाता है जिसमे पुण्यकी महिमा स्पष्ट रीतिसे दिखलाई जाती है उसको गणधरादिक मुनिराज प्रथमानुयोग कहते है। यह प्रथमानुयोग ज्ञान असा-धारण ज्ञान समझा जाता है ॥२५४॥

अर्थ—जिनमे नरक द्वीप सागर मेरु आदि पर्वत स्वर्ग और

वातावलय आदिका स्वरूप उनकी लम्बाई चौडाई मोटाई आदि सबका वर्णन है। उनको करणानुयोग कहते है ॥२५५॥

अर्थ—जिनमे व्रत समिति गुप्ति आदि समस्त मुनि और गृहस्थोके चरित्रका स्वरूप कहा गया हो और उसका फल कहा गया हो वह असाधारण चरणानुयोग शास्त्र कहलाता है। ऐसा गणधरादि ज्ञानी पुरुष कहते है ॥२५६॥

अर्थ—छह द्रव्य, नौ पदार्थ, पाच अस्तिकाय सहित सातो तत्त्वोके स्वरूपको यह निर्मल द्रव्यानुयोग रूपी दीपक बडी अच्छी तरह प्रकाशित करता है। भावार्थ-जिसमे पदार्थ द्रव्य या तत्त्वो का वर्णन हो उसको द्रव्यानुयोग कहते हैं ॥२५७॥

अर्थ—यह चारो अनुयोगोसे सुशोभित होने वाला सम्यग्ज्ञान शोकरूपी वृक्षको काटनेके लिये कुल्हाडीके समान है, जीवनको अत्यत शान्तताके साथ व्यतीत कराता है और मुक्तिरूपी स्त्री का ज्ञान करानेवाला है। ऐसे इस सम्यग्ज्ञानकी आराधना अवश्य करनी चाहिए ॥२५८॥

अर्थ—इस प्रकार जिनका दर्शन मोहनीय कर्म नष्ट होगया है ऐसे भव्य जीवोको इस पाचवे अध्यायमे कहे गये सम्यग्ज्ञान के स्वरूपका विचार करना चाहिए और फिर सम्यक्चारित्र धारण करना चाहिए ॥२५९॥

अर्थ—जो मनुष्य मिथ्याज्ञान पूर्वक चारित्र धारण करता है, वह चारित्र सम्यक् चारित्र नहीं कहला सकता। इसीलिये आचार्योने सम्यग्ज्ञानकी आराधना करके अनन्तर सम्यक् चारित्रकी आराधना करना बतलाया है ॥२६०॥

अर्थ—जो [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] जाते है वे ही [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

है। उस व्रतके पाच भेद है। वे सब व्रत इस पाचवें अध्यायमे निरूपण करेगे ॥२६१॥

अर्थ–उस उत्तम व्रतके दो भेद है एक सकल चारित्र और दूसरा विकल चारित्र। सकल चारित्रके तेरह भेद है और विकल चारित्रके बारह भेद है। भावार्थ–पाच समिति पाच महाव्रत और तीन गुप्ति यह तेरह प्रकारका चारित्र सकल चारित्र कहलाता है। पाच अणुव्रत तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत यह बारह प्रकारका चारित्र विकल चारित्र कहलाता है ॥२६२॥

अर्थ—व्रत धारण करनेकी इच्छा करनेवाले भव्य जीवोको व्रत धारण करनेसे पहले मद्य, मांस और शहद तथा पाचो उदवरोका त्याग प्रयत्न पूर्वक कर देना चाहिए। भावार्थ–मद्य मॉस और शहदका त्याग तथा पॉचो उदवरोका त्याग आठ मूलगुण कहलाते है। मूलगुणोके धारण करनेसे व्रतोके धारण करने की योग्यता वा पात्रता आजाती है। बिना आठ मूलगुण धारण किये यह गृहस्थ श्रावक नही कहला सकता। इन आठ मूलगुणों को पाक्षिक धारण करता है और व्रतोको नैष्ठिक धारण करता है ॥२६३॥

अथ—मद्यपान करनेसे मन मोहित हो जाता है तथा ससारकी समस्त आपत्तिया आकर प्राप्त हो जाती है इसके सिवाय यह मद्यपान इस लोक और परलोक दोनो लोकोमें अनेक प्रकारके दुःख देने वाला है। इसलिए सज्जन पुरुषोको ऐसे इस मद्यपानका अवश्य त्याग कर देना चाहिए ॥२६४॥

अर्थ–मद्यपान करनेसे यादव सब नष्ट होगये एक पाद नामक दुष्ट तपसी नष्ट हो गया, अङ्गारक नामक दुष्ट तपसी नष्ट होगया और इसी मद्यपानके करनेसे पिंगल नामक राजा नष्ट हो गया ॥२६५॥

अर्थ—मासके लिये जीवोंका वध करने वाला, मासका दान देनेवाला, मासको पकानेवाला, मास भक्षणको सम्मति देने वाला, मास भक्षण करने वाला, मास वेचनेवाला और मांस खरीदने वाला अवश्य ही दुर्गति का पात्र है। भावार्थ—ये सब दुर्गतिके पात्र होते हैं ॥२६६॥

अर्थ—प्राणियोंकी हिंसा किये विना मासकी उत्पत्ति कभी नही हो सकती। तथा प्राणियोंकी हिसा करनेसे स्वर्गकी प्राप्ति भी कभी नही हो सकती। इसलिए सज्जनोंको मासका त्याग अवश्य कर देना चाहिए ॥२६७॥

अर्थ—मनुने मास शब्दकी निरुक्ति इस प्रकार की है कि इस लोकमे जिसका मास मै खाता हू वह जीव परलोकमे मेरा मास अवश्य खावेगा यही मास 'मां स' शब्द की निरुक्ति है और मास शब्दका यही अर्थ है ॥२६८॥

अर्थ—विषयी लंपटी पुरुष अपनी स्वार्थ-सिद्धिके लिए कहते हैं कि मास भक्षण करनेमें कोई दोष नही है, मद्यपान करनेमें कोई दोष नही है और मैथुन सेवन करनेमें भी कोई दोष नहीं है। मद्य, मास और मैथुनका सेवन करना तो जीवोंकी प्रवृत्ति के शामिल है। परन्तु उनका यह कहना सर्वथा मिथ्या है। भावार्थ—मिथ्यात्व कर्मके तीव्र उदयसे ही मासादि सेवनकी प्रवृत्ति होती है। भक्ष्य अभक्ष्यका विचार न होना अन्याय और अनर्थोंकी प्रवृत्ति होना आदि सब मिथ्यात्व कर्मके ही उदयसे समझना चाहिए ॥२६९॥

अर्थ—जो लोग यज्ञादि करनेमें या सभामें प्रतिष्ठा [illegible] करते हैं जो निर्दय हैं और जिनका हृदय पापाचरणमें लगा रहता है, ऐसे लोग ही मास भक्षण मद्यपान आदि अभक्ष्य भक्षण का उपदेश करते हैं। सज्जन पुरुष कभी ऐसे [illegible] बात नहीं मानते ॥२७०॥

अर्थ—जिनकी वुद्धि दयासे भीग रही है जो कुलाचार, व्रताचार आदि पवित्र चारित्रिका पालन करते है और जो सदा सत्य भाषण करते है ऐसे पुरुपोकी वाणी सदा प्रशसनीय ही होती है ऐसे महापुरुपोके वचन ऊपर लिखे अनुसार अभक्ष्य भक्षणको प्रकट करनेवाले पापमय वचन कभी नही हो सकते ।।२७१।।

अर्थ—यदि परलोकका सदेह हो तो भी बुद्धिमानोको पापकार्योका त्याग ही कर देना चाहिए । यदि परलोक न हो तो भी पापकार्योके करनेमे कोई लाभ नही होता । कदाचित् परलोककी सत्ता वास्तवमे सिद्ध हो जाय तो फिर परलोक न माननेवाले नास्तिक लोगोका नाश ही समझिए । भावार्थ—फिर ऐसे लोगोंकी आत्माका कल्याण कभी नही हो सकता । इसलिये परलोककी सत्ता मानकरपापकार्योसे सदा वचते रहना चाहिये ।।२७२।।

अर्थ—जो जोव परलोक मानते है उन्हे मद्यपान करनेवाले वा मास भक्षण करनेवाले मनुष्योके घर कभी भोजन नही करने चाहिए । प्राण निकलने पर भी मास भक्षियोके घर पर अन्नपान नही करना चाहिए । भावार्थ—मद्यमास भक्षण करनेवालोके घर पर बैठकर अपने घरका बनाया हुआ भोजन भी नही करना चाहिए । क्योकि वह स्थान वा क्षेत्र अनेक जीवोका हिसास्थान है, ऐसे स्थानोमे वैठना भी चरित्रको नष्ट करना है ।।२७३।।

अथ—जो पुरुप पक्तिवाह्य (पतित वा शूद्र आदि जिनके साथ भोजन आदि नही हो सकता) लोगोके साथ भोजन करते है वा उनके साथ अधिक ससर्ग रखते है वे मनुष्य निंदनीय गिने जाते है तथा परलोकमे भी ऐसे लोग सदा दुखी रहते है ।।२७४।।

अर्थ—कुत्सित वा निन्दनीय शास्त्रोके पठन-पाठनसे जिनकी

बुद्धि भ्रष्ट हो गई है तथा कुतर्कोंके द्वारा जिनके हृदयके शुभ परिणाम नष्ट होगये है । ऐसे कितने ही धृष्ट लोग कहते हैं कि इस ससारमे अभक्ष्य पदार्थ कुछ भी नही है। भावार्थ—इस जीवका जैसा ज्ञान होता है वैसी ही इन्द्रिय और मनकी प्रवृत्ति होती है तथा वह ऐसी ही युक्तियों को ढूंढ लेता है। मिथ्या शास्त्रोके ससर्गसे जिनका ज्ञान मिथ्याज्ञान वा कुज्ञान होगया है ऐसे लोगोको इस ससारमे पाप ही पाप सूझता है। यहा तक कि वे पापको भी धर्म कहने लग जाते ह। ऐसे लोग अनेक प्रकारकी युक्तियोंके द्वारा वा प्रलोभनके द्वारा अन्य लोगोको भी अपने समान ही बनानेकी चेष्टा करते है। ऐसे लोग ही अभक्ष्य भक्षणकी प्रवृत्ति करते हैं तथा अनेक प्रकारके अन्याय और अनर्थोंका प्रचार करते है। अतमे जाकर ऐसे लोग पछताते है और नरकके पात्र होते है।

जो लोग सम्यग्ज्ञानी है जिन्हे आत्माके स्वरूपका ज्ञान है ऐसे लोग सदा पवित्र आचरण पालन करते है अन्याय अभक्ष्य से वचते है और सदा धर्म-कार्योंमे ही लीन रहते हे ॥२७५॥

अर्थ—कितने ही मिथ्यावादी लोग कहते है कि जीव सव समान है और जीवोका शरीर भी सव समान है जिस प्रकार—हिरण मेढा आदि पशुओका शरीर मास कहलाता है उसी प्रकार मोठ उडद आदि एकेन्द्रिय वृक्षोका शरीर भी माँस कहलाता है। यदि मासके खानेमे पाप है तो अन्नके खानेमे भी पाप होता है। यदि अन्नके खानेमे पाप नही है तो मासके खाने मे भी पाप नही है। परन्तु उनका कहना यह सर्वथा विरुद्ध है। इसलिए ऐसे वचन कभी कहने चाहिए। क्योकि जैन-शास्त्रोमे लिखा है कि जीवोके दो भेद है, स्थावर और जगम वा त्रस। लट केंचुआ आदि दो इन्द्रिय, चीटी, चीटा आदि तेइन्द्रिय,

मक्खी, भौरा आदि चौइन्द्रिय और मछली मेढा आदि पचेन्द्रिय जीव कहलाते है, ये सब त्रस है। इन जीवोका शरीर माँस कहलाता है। आम, केला, नीबू आदि वनस्पति कायके जीव स्थावर कहलाते है। स्थावर जीवोका शरीरमाँसनही कहलाता किन्तु उनका शरीर फल वा पत्तीरूप होता है। फल भक्ष्य है माँस अभक्ष्य है। माँस अनन्त जीवोका पिण्ड होता है, उसमे हर समय अनन्त जीव उत्पन्न होते रहते है। इसलिए वह घृणित अपवित्र और निंद्य कहलाता है। बिना हिंसाके माँस हो नही सकता, इसलिए भी उसके भक्षण करनेमे महापाप होता है। परन्तु फलोमे यह बात नही है। मूँग, मोठ, गेहू आदि अन्नों मे प्रतिसमय अनन्त जीवोकी उत्पत्ति नही होती हाँ घुन जाने-पर वे अवश्य त्याज्य होजाते है। इसलिए अन्नके भक्षण करने-मे पाप नही है माँसके भक्षण करनेमे महापाप है।

इसके सिवाय एक बात यह भी है कि मास भक्षण करने-वाले लोग क्रूर, निर्दयी, आतायी, मलिन विचार करनेवाले और पापी होते है तथा अन्न भक्षण करनेवाले शान्त, पवित्र विचारवाले सदाचारी और दयालु होते है। प्रत्यक्षमे भी माँस और अन्नमे आकाश पाताल का अन्तर है। इसलिए माँस अभक्ष्य है और अन्न भक्ष्य है ॥२७६,२७७,२७८॥

अर्थ--माँस जीवका ही शरीर होता है, परन्तु जितने जीवों के शरीर है वे सब ही माँस रूप हो यह वात नही है जैसे नीम का वृक्ष वृक्ष ही होता है परन्तु जितने वृक्ष है वे सब ही नीम होते हों, यह कभी नही हो सकता। अथवा जिस प्रकार गरुड़ पक्षी होता है, परन्तु जितने पक्षी होते है वे सब ही गरुड होते हो यह वात नही है। अथवा जिस प्रकार स्त्री ही माता होती है परन्तु माता सबकी स्त्री नही हो सकती। इसीप्रकार माँस तो जीवका शरीर ही होता है, परन्तु जीवोके जितने शरीर हैं

की विलक्षणता है। स्तनसे दूध भी निकलता है और रुधिर भी निकलता है परन्तु रुधिर त्याज्य है और दूध ग्राह्य है। उसी प्रकार मास अभक्ष्य और दूध भक्ष्य है नीम कड़ुआ होता है, परतु वह कड़ुआ क्यो है ऐसी तर्क वा कुतर्क कोई नही कर सकता, क्योकि कड़ुआ होना उसका स्वभाव है। स्वभावमे कोई तर्क वितर्क नही चल सकता। इसी प्रकार मास अपवित्र और अभक्ष्य है उसका स्वभाव ही ऐसा है। इसमे भी किसीका तर्क काम नही देता। दूधकी मर्यादा दो मुहूर्त है। दो मुहूर्तके पहले गर्म कर लेने पर उसकी मर्यादा आठ पहरकी हो जाता है। आठ पहर तक वह दूध शुद्ध और पीने योग्य माना जाता है। परतु मास चाहे कच्चा हो चाहे पका हो और चाहे पक रहा हो उसमे प्रतिसमय अनन्तानन्त जीव उत्पन्न होते रहते हैं। इसलिए वह सदा अपवित्र और सदा त्याज्य है।

दूध पानीसे भी शुद्ध है। पानीको छान लेनेपर उसमेसे त्रस जीव निकल जाते है, परन्तु स्थावर जीव उसमे रहते ही है। पानी पर वा मास पर बिजली का असर होता है परतु दूध पर नही होता। इसलिए दूध लकडीके समान शुद्ध और निर्जीव है। इसीलिये तीर्थंकरोने आहारमे दूध लिया है। तथा इसीलिये दूध से भगवानका अभिषेक किया जाता है ॥२८२,२८३॥

अर्थ—वैष्णवोके यहाँ माने हुए पच गव्यमे गोमय (गोबर) और गोमूत्र माना है। गोमय और गोमूत्र दोनो ही गायसे उत्पन्न होते है तथा रोचना भी [गोरोचन] गायसे उत्पन्न होता है, परन्तु उन्ही वैष्णवोके यहा गोमूत्र और गोमय दोनो ग्रहण करने योग्य माने हैं तथा प्रतिष्ठादिक कार्योमे वे गोरोचनको भी ग्रहण करते हैं। परन्तु वे ही वैष्णव गोमासको शपथपूर्वक त्याग कर देते है। यद्यपि गोरोचन और गोमास दोनो ही एक

अर्थ—राजा वक, राजा भीमदास और राजा सिंहसौदास केवल मास भक्षणके दोषसे ही नरकमे जाकर उत्पन्न हुए थे ।।२६०।।

अर्थ—यह शहद अनेक जीवोसे भरा हुआ है, अनेक जीवों के घात होनेसे उत्पन्न होता है और लारके समान निद्यनीय है ऐसे शहदको भला कौन चतुर पुरुष खानेकी इच्छा करेगा ? अर्थात् कोई नही । भावार्थ—शहदके निकालनेमे मक्खियोके अडे बच्चे मर जाते है तथा जो अंडे बच्चोका अर्क है उसमें सदा असख्यात जीव उत्पन्न होते रहते है इसलिए शहद भी मासके समान ही त्याग करने योग्य है ।।२६१।।

अर्थ—शहद मे इतने जीव होते है कि उसकी एक बूदके चाटनेमे जितने जीवोका घात होता है उतने जीवोका घात एक गावके जलानेमे भी नही होता ।।२६२।।

अर्थ—पहलेके अनेक मुनियोने बतलाया है कि इस मनुष्यको बारह गावोके जलानेमे जितना पाप होता है उतना ही पाप शहदके खानेमे होता है । इसोलिये शहदके खानेका सर्वथा त्याग कर देना चाहिये ।।२६३।।

अर्थ—औषधिमे भी खाया हुआ शहद नरकका कारण अवश्य होता है इसमे किसी प्रकारका सदेह नही है । विषको यदि गुडके साथ दिया जाय तो क्या वह मृत्युका कारण नही होता ? अवश्य होता है । इसोलिये ओषधिके साथ भो कभी शहद नही खाना चाहिए ।।२६४।।

अर्थ—पुष्पत्तन नामके नगरमें एक लोला नामका ब्राह्मण था वह शहद खानेके दोषसे ही दुर्गतिका पात्र हुआ था ।।२६५।।
अर्थ—शहदके भक्षणका त्याग कर देनेमे राजोवलोचन नाम

का क्षत्रिय कमलनयन नामका देव हुआ था और वहासे आकर राजीवलोचन नामका राजा हुआ था और अन्तमे वह निर्वाण-पदको प्राप्त हुआ था ॥२६६॥

अर्थ—मक्खनमे अतमुर्हूतके वाद ही त्रस जीव उत्पन्न हो जाते है इसलिए चतुर पुरुपोको ऐसा यह मक्खन कभी नही खाना चाहिए ॥२६७॥

अर्थ—भगवान जिनेन्द्रदेवने मक्खनको भी शहदके समान अभक्ष्य ही वतलाया है। जो पुरुप ऐसे इस मक्खनका सेवन करता है उसके सयमका लेश मात्र भी नही हो सकता। भावार्थ उससे थोडासा भी सयम नही हो सकता ॥२६८॥

अर्थ—जो भव्य जीव एक जीवकी रक्षा भी वडे प्रयत्नसे करता है वह जीव अनेक प्राणियोसे भरपूर ऐसे मक्खनका सेवन कैसे कर सकता है ? अर्थात् कभी नही ॥२६९॥

अर्थ—चतुर और विचारवान मनुष्य वडके फल पीपलके फल पीलू फल काकोदुम्बर वा अजीर और गूलर फलोका सेवन कभी नही करते है। क्योकि इन पाचो प्रकारके क्षीर वृक्षके फलोमे अनेक त्रस जीवोका निवास रहता है तथा उसमे स्थावर जीव भी वहुत से रहते है। इसीलिए वुद्धिमान पुरुष इन पाचो उदम्वर फलोका सेवन कभी नही करते है। काकोदुम्वर और कठूमर का एक ही अर्थ है। दोनो शब्दोका अर्थ अजीर है वहुतसे लोग जो विना फूल लगे काठ फोड कर फल लगे उन फलोको कठूमर कहते है परन्तु ऐसी समझ ठीक नही है। कठूमरअजीरको ही कहते है आचार्य श्रुतसागरजीने भी षट्पाहुडकी भाषामे कठूमरका अर्थ अजीर ही बतलाया है। इसलिए कठूमरका अर्थ अजीर ही लेना चाहिए ॥३००,३०१॥

अर्थ—इन ऊपर कहे हुए पाचो प्रकारके क्षीर वृक्षोके फलोमे अनेक प्रकारके त्रस जीव निवास करते है इसलिए इनके सेवन करनेसे जन्म मरण रूप ससारमे डुबो देने वाला महापाप उत्पन्न होता है। भावार्थ—जिन वृक्षोसे दूध निकलता है उनको क्षीर वृक्ष कहते है क्षीर वृक्ष ग्रनेक है परन्तु उनमेसे ऊपर कहे हुए पाच प्रकारके क्षीर वृक्षोके फलोमे अनेक जोव उत्पन्न होते है इसीलिए आचार्योने इन्ही पाचोका त्याग कराया है ॥३०२॥

अर्थ—श्रेष्ठ व्रतोसे सुशोभित होने वाले श्रावकको चमडेके पात्रके ससर्गसे अपवित्र हुये तेल घो पानी आदि पदार्थोको प्राण नाश होने पर भी ग्रहण नही करना चाहिए ॥३०३॥

अर्थ—जो पुरुप देश कालका बहाना बताकर चमड़ेके ससर्ग वाले घी तेल ग्रादिको ग्रहण कर लेते है वे लोग भगवान जिनेन्द्रदेवकी आज्ञाका उल्लघन करते है इसीलिये वे पेड पेड पर निदनीय माने माते है। भावार्थ—वे हर समय निदनीय कहे जाते है क्योकि भगवानकी ग्राज्ञाका उल्लघन करना महापाप गिना जाता है ॥३०४॥

अर्थ—बिना जाने हुये फलोको खाने वाले, बिना शोधे हुए शाक भाजीको खाने वाले, घुनी हुई सडी सुपारो खाने वाले, बाजराका आटा खाने वाले, विना परीक्षा किए हुये बाजराका मलिन घी खाने वाले, विना परीक्षा किये बाजरेका दूध पीने वाले, म्लेच्छोका ग्रन्न खाने वाले अथवा बाजरे वा होटलो मे भोजन करने वाले, अपना वनाया भोजन भी शूद्र और निद्य मनुष्योके घर बैठकर खाने वाले, वा इनके सिवाय ऐसी ही मलिनाचारकी प्रवृत्ति करने वाले लोगोको मास भक्षियोके समान ही समझना चाहिए। ऐसे मनुष्य उत्तम श्रावक कभी नही हो सकते। जो लोग विना जाने हुए मनुष्योके वर्तनोमे खा

पी लेते है वा चाहे जिस घरकी छाछ खा लेते हैं उनको भी मास भक्षियो के समान ही समझना चाहिए। ऐसे लोग उत्तम श्रावक कभी नही हो सकते। भावार्थ—श्रावक विवेकी और विचार-शील होते है और अपने समस्त कर्तव्योको जिनागमके अनुसार ही पालन करते हैं। तभी वे सम्यग्दृष्टि श्रावक कहलाते हैं। जिन लोगोंके भक्ष्य अभक्ष्य का विचार नही है जो लोग शूद्रो तकके हाथका भोजन पान करते हैं वे भला सदाचारी सम्यग्दृष्टी कैसे हो सकते है। शूद्र लोग जैन धर्म धारण कर सकते हैं तथा स्वच्छतासे रह सकते हैं तथापि उनका शरीर जिस रजो वीर्यसे वना है वह शुद्ध नही है इसीलिये शूद्रोके सस्कार नही होते है। तथा सस्कार न होनेसे ही वे दान पूजा मुनिदीक्षा आदिके अधि-कारी नही होते है। उनके पूर्व जनित पाप कर्मोके उदयसे नीच गोत्रका उदय रहता है और वह मरण पर्यन्त तो रहता ही हे। इसलिये वे उस शरीरके रहने पर्यन्त तो अशुद्ध ही रहते है इसके सिवाय शूद्रोमे ऋतु धर्मका पालन नही होता मद्यपानका ससर्ग रहता ही है विवेक और उत्तम आचरण भी नही होते इसीलिए शूद्र लोगोकी शुद्धि नही होती। यदि कोई शूद्र सम्य-ग्दर्शन धारण कर वा अणुव्रतादिक धारण कर अपनी आत्माको पवित्र वनाले तथापि उसका शरीर अशुद्ध ही रहता है। इस-लिए शूद्रके हाथका भोजन पान कभी नही करना चाहिये। वाजारक घी मे न जाने क्या २ मिला हुआ होता है वाजराका आटा न जाने कितने दिनोका और कैसे सडे घुने अन्नका होता हे। इसलिये वाजारकी ऐसी चीजोको कभी ग्रहण नही करना चाहिए ॥३०५,३०६,३०७॥

अर्थ—जो लोग गीले पात्रमे रक्खे हुये भोजनोका भक्षण करते है, जो नीम गोभी कचनार आदिके फूलोको भक्षण करते है, दो दिनकी रक्खी हुई छाछ वा दही खाते है और दो दिनकी

रक्खी हुई काजी खाते है तथा विना छने पानीको पीनेके काममे लाते है अथवा सवेरेके छने पानीको दिन भर काममे लाते है ऐसे गृहस्थोको मद्यपान करने वालोके समान ही समझना चाहिए। ऐसे गृहस्थ भी उत्तम श्रावक नहीं कहला सकते। भावार्थ—इन सबमे त्रस जीव पड जाते है वा उत्पन्न हो जाते है। इसलिये ये सब चीजे त्याज्य करने योग्य है ॥३०८,३०९॥

अर्थ–जो अन्न घुन गया है जिन फलोका वा पदार्थोका रस चलित होगया है स्वाद बदल गया है वा बिगड गया है जिसके ऊपर सफेदी आ गई है अर्थात् जिस पूडी रोटी आदि पर सफेदी आ गई है ऐसे पदार्थोके खानेका त्याग करनेवाले मनुष्य ही श्रावक हो सकते है तथा ऐसे ही श्रावक आठ मूल गुणोको पालन कर सकते है। अथवा यो कहना चाहिए कि जो आठ मल गुणोको धारण करते है वे ही श्रावक कहलाते है। तथा ऐसे श्रावक घुने चलित रस और सफेदो पर आये हुये भोजनको कभी नही करते है ॥३१०॥

अर्थ—कच्चा दूध, कच्चा दही और कच्चे दूधके जमाये दही की छाछमे यदि उडद मूग चना आदि (जिनको दो दाले हो सकती है) द्विदलको खानेसे लारके सयोगसे उसमे त्रस जीव उत्पन्न हो जाते है इसलिए शुद्ध सम्यग्दृष्टियोको ऐसा दही आदिका मिला हुआ द्विदल कभी नही खाना चाहिए इसो प्रकार मर्यादा के बाहरका दूध दही भी नही खाना चाहिए। द्रोणपुष्प आचार, तरबूज आदि पदार्थ भी उनको कभी नही खाने चाहिए ॥३११॥

अर्थ—शुद्ध सम्यग्दृष्टियोको आचार, मुरब्बा, बगन, पेठा, भोपला करीर, वनकेला और ओलागार कभी नही खाने चाहिए ॥३१२॥

अर्थ—सेम, मूली, वेल, सव तरहके फूल कमलनाल सूरण कद और अदरख आदि पदार्थोका त्याग कर देना चाहिए। ॥३१३॥

अर्थ—सितावर गवारपाठा, गिलोय, अरणी थूहर, अमर-वेल और कच्ची इमलीका भी सर्वथा त्याग कर देना चाहिए। ॥३१४॥

अर्थ—कडवी तूवी, घीया तोरई, कङ्कोडी, वन्ध्य कङ्कोडी, वनकरेला, खिरनी जामुन, तिदु के फल, अमाडपवाड पत्र, इत्यादि जिन-जिनमे सूक्ष्म जीवोंकी उत्पत्ति हो ऐसे समस्त फल वा पत्तोका त्याग कर देना चाहिए। नये छोटे-छोटे पत्ते भी अनेक सूक्ष्म जीवोसे भरे रहते है, इसलिए उनका भी त्याग कर देना चाहिए ॥३१५,३१६॥

अर्थ—जो भव्य जीव ससारके परिभ्रमणसे भयभीत हो रहे है उनको कच्चाकन्द कभी नही खाना चाहिए। सचणखार, लोण, नाली आदि पदार्थोका त्याग कर देना चाहिए तथा पुष्पो का भी त्याग कर देना चाहिए ॥३१७॥

अर्थ—मास, रुधिर, कच्चा चमडा, गीली हड्डी और मद्यको देखकर प्रत्येक श्रावकको अपना भोजन छोड देना चाहिए। इसी प्रकार भोजनमे मरा हुआ जीव दिखाई पड जाय तो भोजन का त्याग कर देना चाहिए तथा त्याग किया हुआ पदार्थ यदि सेवन करनेमे आजाय तो भी भोजनका त्याग कर देना चाहिए। इस प्रकार ये सात अतराय आचार्योने वतलाये हैं। प्रत्येक श्रावक को इनका पालन अवश्य करना चाहिए। इनके सिवाय अतराय तो और भी हैं। परन्तु वे अत्यन्त कठिन हे। इसलिये यहा पर ये सात ही अतराय वतलाये हैं अधिक नही वतलाये ॥३१८, ३१९॥

अर्थ—रात्रिमे घोर अन्धकार छा जाता है, इसलिये उसमे भोजनमे पडे हुए प्राणि दिखाई नही पडते। इसीलिए सज्जन पुरुष रात्रिमे भोजन कभी नही करते है। रात्रिमे यदि प्रकाश किया जाय तो पतङ्गा आदि अनेक जीव जन्तु आ जाते है। इसलिए रात्रिमे भोजन बनाना भी नही चाहिए, न रात्रिका बना भोजन कभी नही खाना चाहिये ॥३२०॥

अर्थ—यदि भोजनके साथ मक्खी पेटमे चली जाय तो वमन हो जाता है, यदि छोटी छिपकली वा कसारी चली जाय तो कोढ रोग हो जाता है, यदि चीटी पेटमे चली जाय तो बुद्धि बिगड जाती है। यदि पत्थरका टुकडा मुहमे आजाय तो दात टूट जाता है। यदि गोबर चला जाय तो घृणा हो जाती है और यदि भोजनमे जू मिल जाय तो जलोदर रोग हो जाता है। भावार्थ—रात्रिमे भोजनमे मिले हुये अनेक जीव दिखाई नही देते। उनमेसे कितने ही जीव विषैले होते है, जिनके पेटमें चले जाने पर अनेक प्रकारके रोग हो जाते है। इसलिए रात्रिमे भोजन कभी नही करना चाहिए, न बनाना चाहिये ॥३२१, ३२२॥

अर्थ—यदि बाल खानेमे आजाय तो स्वरभग हो जाता है, यदि काटा खानेमे आजाय तो कण्ठमे पीडा हो जाती है और यदि बीच्छू खानेमे आजाय तो तालुका भग हो जाता है। इसमे किसी प्रकारका सन्देह नही। इसलिए रात्रिमे भोजन नही करना चाहिये ॥३२३॥

अर्थ—रात्रिमे भोजन करनेसे और भी अनेक प्रकारके दोष उत्पन्न होते है जो वाणीसे कहे भी नही जाते। यही समझकर सज्जन पुरुषोको अनेक पाप उत्पन्न करनेवाले रात्रिके भोजनका अवश्य त्याग कर देना चाहिये ॥३२४॥

अर्थ—जो बुद्धिमान पुरुष रात्रिमें सब प्रकारके आहारका त्याग कर देते है, उनको एक महीनेमे पन्द्रह दिनके उपवासका फल मिलता है, तथा वर्ष भर मे छह महीनेका उपवास हो जाता है ॥३२५॥

अर्थ—जिनके आत्माकी शक्ति नष्ट सी हो गई है। ऐसे जो लोग रात दिन खाते रहते है उन्हे विना सीग पूछके पशु ही समझना चाहिए। भावार्थ—जिस प्रकार पशु विवेक हीन होते है उसी प्रकार रात्रिमे खाना भी विवेकहीनता है ॥३२६॥

अर्थ—जो पुरुष प्रात काल की दो घडी छोडकर और साय-कालकी दो घड़ी छोडकर दिनमे (सूर्योदयसे दो घडी वादसे लेकर सूर्य अस्त होनेके दो घडी पहले तक) भोजन करता है। उसीके रात्रिभोजन त्याग नामका व्रत समझना चाहिए ॥३२७॥

अर्थ—रात्रि भोजनके त्याग करनेका फल एक शृगालको प्राप्त हुआ था और उसके त्याग न करनेका फल धनश्रीको प्राप्त हुआ था। इन दोनोका फल सव लोगोने देखा था। भावार्थ—एक शृगालने किसी मुनिराजसे रात्रिभोजन त्याग करनेका व्रत लिया था उसके फलसे वह स्वर्गमे उत्पन्न हुआ था और अतमे प्रीतिकर होकर श्रेष्ठ गतिको प्राप्त हुआ था। धनश्रीने रात्रि-भोजन का त्याग नही किया था इसलिए उसे दुर्गति प्राप्त हुई थी ॥३२८॥

अर्थ—रात्रिमे भोजन करनेवालोको उल्लू, कौआ, विल्ली, गीध, भेडिया, सूअर, सर्प, वीछू, और गोह आदि नीच पर्याये प्राप्त होती है ॥३२९॥

अर्थ—जो पुरुष रात्रिभोजनका त्याग सर्वथा कर देता है उस पुरुषमे जो जो गुण उत्पन्न होते है उनको सर्वज्ञदेवके सिवाय अन्य कोई कह भी नही सकता है ॥३३०॥

अर्थ—जैन शास्त्रोमें श्रावकोके वारह व्रत बतलाये है उनमेसे पाच अणुव्रत है तीन गुणव्रत है और चार शिक्षाव्रत है ।।३३१।।

अर्थ—कषायके निमित्तसे प्राणियोके प्राणोका व्यपरोपण करना हिंसा कहलाती है । इस प्रकार कपायके निमित्तसे किसी काल वा किसी क्षेत्रमे प्राणोका व्यपरोपण वा वियोग नही करना अहिंसा व्रत कहलाता है । यह अहिसा व्रत समस्त लोक-का हित करनेवाला है ।।३३२।।

अर्थ—बुद्धिमानोको विचार करना चाहिए कि ससारमे जो अनेक प्रकारके अनिष्ट, कोढी, और लगडे आदि देखे जाते है वे हिंसाके ही फलसे होते है । इसलिये त्रस जीवोकी हिसा कभी मनसे भी नही करनी चाहिये ।।३३३।।

अर्थ—जो भव्य जीव सदा रहने वाले मोक्ष सुखकी इच्छा करते है और इसीलिए जिन्होने हिंसा करनेका सर्वथा त्याग कर दिया है ऐसे पुरुषोको स्थावर जीवोकी भी निरर्थक बिना प्रयो-जनके हिंसा कभी नही करनी चाहिए । भावार्थ—श्रावकोके यद्यपि त्रस जीवो की सकल्पी हिसाका त्याग होता है तथापि उनको बिना प्रयोजनके स्थावर जीवोकी हिसा भी कभी नही करनी चाहिए ।।३३४।।

अर्थ—पृथ्वीकायिक, जलकायिक, वायुकायिक, तेजकायिक, और वनस्पतिकायिक, स्थावर जीवोके ये पाच भेद है । इसी प्रकार त्रस जीवोके दश भेद है दो इन्द्रिय तेइन्द्रिय चौइन्द्रिय असैनी पचेन्द्रिय और सैनी पचेन्द्रियके भेदसे त्रसोके पाच भेद होते है । इन्ही पाचोके सूक्ष्म स्थूलके भेदसे दश भेद हो जाते है अथवा अपर्याप्तक और पर्याप्तकके भेदसे दश भेद हो जाते है । बुद्धिमान व्रती श्रावक यद्यपि अपने सव काम यत्नाचार पूर्वक

करता है तथापि उनमें रसोई व्यापार आदिके करनेमें पाच प्रकारके स्थावर जीवोंकी हिंसा होती है। इस प्रकार वह स्थावर जीवोंकी हिंसा करता हुआ भी इस प्रकारके त्रस जीवो को रक्षा करता है उनकी हिंसा कभी नही करता, इसीलिए वह विरता-विरत कहलाता है। त्रस जीवोकी हिंसासे विरत और स्थावर जीवोंकी हिंसासे अविरत होनेके कारण विरताविरत कहलाता है ॥३३५॥

अर्थ—"तू मर" इस प्रकार यदि किसी जीवसे कहा जाय तो भी वह महा दु खी होता है फिर भला जिसको तीक्ष्ण शस्त्रो से मारा जाता है वह भला दु खी क्यो न होगा ? अवश्य होगा ॥३३६॥

अर्थ—जीव चाहे सुखी हो चाहे दु खी हो यथापि जीनेकी इच्छा सब करते है। इसलिए कहना चाहिए कि जो मनुष्य इस जीवको जीवनदान देता है वह इस ससारमे सब कुछ दे देता है भावार्थ—जीवदान देनेके समान इस ससारमे और कोई दान नही है ॥३३७॥

अर्थ—ससारमे जितनी देविया है उन सब देवियोमे दया देवी ही सबसे बड़ी देवी वा सर्वोत्कृष्ट देवी है। क्योकि यह दया देवी ही समस्त जीवोको अभयरूपी प्रदक्षिणा प्रदान करती है अर्थात् समस्त जीवोकी रक्षा करती है ॥३३८॥

अर्थ—जिसकी तीक्ष्णधार है और जो मारनेके लिए हाथसे ऊपर उठा रक्खी है ऐसी तलवारको ही देखकर लोगोके नेत्र भयभीत हो जाते है और वे कापने लगते है। सो ठीक ही है क्योकि इस ससारमे मृत्युके समान और कोई भय नही है ॥३३९॥

अर्थ—यदि किसी जीवकी हिंसा किसी देवताके लिए की

जाय अथवा मरे हुए पितरोके लिए की जाती है तो भी उससे शान्ति कभी नही हो सकती। सो ठीक ही है क्योकि गुडमे मिला हुआ विष क्या प्राणोका घातक नही होता ? अवश्य होता है। भावार्थ–जिस प्रकार गुडमे मिलाकर विष खानेसे भी प्राणोका घात अवश्य होता है उसी प्रकार किसी देवता वा पितरोके लिए की गई हुई हिसा भी नरकका कारण होती है। इसलिए हिसा किसी प्रकार भी नही करनी चाहिए ॥३४०॥

अर्थ–जो हिसा विघ्नोकी शान्ति करनेके लिए की जाती है उस हिसासे विघ्नोकी शान्ति तो नही होती किंतु विघ्न बढ जाते है। इसी प्रकार जो हिसा कुलाचारकी वृद्धिके लिये की जाती है उस हिसासे कुलकी वृद्धि नही होती किंतु कुलका नाश होजाता है इसलिए विघ्नोकी शान्तिके लिए अथवा कुलकी वृद्धि के लिए महा पापरूप प्राणियोका वध कभी नही करना चाहिए देखो महाराज यशोधरने शान्तिके लिए देवताके सामने केवल आटेके मुर्गे बनाकर चढाये थे। उस सकल्पी हिसाके फलसे यशोधरके जीवको कितनी दुर्गतियोका घोर दुःख सहन करना पडा था। इसलिए शान्तिके लिए भी कभी हिसा नही करनी चाहिए ॥३४१, ३४२॥

अर्थ–बाहसे टोटा होजाना अच्छा अथवा लगडा होजाना अच्छा अथवा शरीर रहित ही होजाना अच्छा परन्तु सर्वाङ्ग सुन्दर पूर्ण शरीरको धारण करते हुये हिसा करनेमे तत्पर रहना अच्छा नही ॥३४३॥

अर्थ—मृगसेन धीवरके जीवने पाच वार एक मछलीकी हिसा का त्याग किया था इसलिए वह पाच वार आपत्तियोसे बचा था उसके फलसे वह धीवरका जीव उच्चकुलीन और वैभवशाली सेठ धनकीर्ति हुआ था और वहा पर अनेक प्रकार की सम्पत्तियोको प्राप्त हुआ था ॥३४४॥

अर्थ—जो मनुष्य किसी हानि लाभ भय वा द्वेषके कारण कभी झूठ नही बोलता सदा सच बोलता है उसको दूसरा सत्य-व्रत कहते है ॥३४५॥

अर्थ—यह जीव मिथ्याभाषण करनेके फलसे कुरूप होता है, अत्यन्त गरीब होता है और निद्य होता है। मिथ्या भाषणका ऐसा फल समझकर सत्य बोलनेवालोको इस मिथ्या भाषणका उसी क्षणमे त्याग कर देना चाहिए ॥३४६॥

अर्थ—जिस प्रकार महावायुसे बडे बडे वृक्ष उखड जाते है उसी प्रकार झूठ बोलनेसे ज्ञान आदि समस्त गुण नष्ट हो जाते है। इसलिए ऐसे असत्य वचनो को प्रमादसे भी कभी नही कहना चाहिए ॥३४७॥

अर्थ—आत्म तत्वके यथार्थ स्वरूपको जानने वाले विद्वान् लोगोको ऐसे वचन कभी नही बोलने चाहिए जो असत्यके आश्रित हो, असत्यसे मिले हो जो लोक और आगमसे विरुद्ध हो जो पापोकी प्रवृत्ति करनेवाले मलिन वचन हो जो ग्रामीण वा निद्यनीय हो और जो निष्ठुर वा कडे वचन हो। विद्वान् लोगोको ऐसे वचन कभी नही बोलने चाहिए। इन सब वचनो में आगमके विरुद्ध बोलना महापाप गिना जाता है ॥३४८॥

अर्थ—जो जीव जिनशासनको पाकर भी सत्य वचन नही बोलता है वह झूठ बोलनेवाला मूर्ख मनुष्य मरकर किस दुर्गति को प्राप्त होगा? भावार्थ—वह सबसे हीन गति को प्राप्त होगा ॥३४९॥

अर्थ—सत्य वचन बोलनेसे यह जीव सब जीवोका विश्वास-पात्र हो जाता है। सो ठीक ही है क्योकि गलीका पानी क्षीर-सागरमे पड कर क्या दूध नही बन जाता? अवश्य बन जाता है ॥३५०॥

अर्थ—समस्त जीवोका हित करनेवाले मधुर वचनोका
ा अपने आत्माके आधीन है। प्रत्येक मनुष्य ऐसे वचन बोल
है। फिर भला ऐसा कौन बुद्धिमान है जो कानोको कडुवे
ाले अत्यन्त कठोर वचनोको कहता हो ? अर्थात् कोई
भावार्थ—मिष्ट वचन बोलना अपने आधीन है इसलिए
मनुष्यको मधुर वचन ही बोलना चाहिए ॥३५१॥

र्थ—जो दयालु मनुष्य जीवोकी रक्षा करनेके लिए असत्य-
ध रखनेवाले वचन भी कहता है तो भी वह पापी नही
जाता। भावार्थ—जीव।-रक्षाके समान अन्य कोई भी पुण्य
इसलिए जिन असत्य वचनोके कहनेसे जीवोकी रक्षा
हो वे असत्य वचन भी सत्य वचनोके समान है। ऐसे
वचनोके बोलनेसे कोई पाप नही है ॥३५२॥

र्थ—अनेक पापोसे ठगा हुआ जो मनुष्य दूसरेके दबावसे
वचन बोलता है वह मनुष्य राजा वसुके समान शीघ्र ही
र नरकमे पहुचता है ॥३५३॥

र्थ—जो मनुष्य अपने आत्माका हित चाहते है उन्हे ऐसे
बोलने चाहिए जो सत्य हो समस्त जीवोका उपकार करने
हो और आत्माका कल्याण करनेवाले हो। भव्य जीवोको
ी वचन कहने चाहिए ॥३५४॥

अर्थ—धनदेवने सत्य वचन कह कर उत्तम फल वा सद्गति
की थी और जिनदेवने झूठ बोल कर दुर्गतिका फल प्राप्त
था ॥३५५॥

अर्थ—किसी मार्गमे वा वनमे जो पदार्थ किसीके द्वारा
हुआ पड़ा है गिरा हुआ पडा है, नष्ट हुआ वा खोया हुआ
है अथवा किसीका रक्खा हुआ है उसको दूसरेका धन

समझ कर ग्रहण न करना तीसरा अचौर्य अणुव्रत कहलाता है ॥३५६॥

अर्थ—जो मनुष्य मोक्ष प्राप्त करनेकी लालसा रखता है, और जो अचौर्य अणुव्रतको धारण करता है, उस बुद्धिमानको समझ लेना चाहिए कि दास होना नृत्यकार होना, दरिद्री होना, भाग्यहीन होना आदि निंद्य फल चोरी करनेसे ही मिलता है। इसलिए चोरी करनेका सदाके लिए त्याग कर देना चाहिए ॥३५७॥

अर्थ—यदि किसी मनुष्यके मनमे चोरी करनेके परिणाम भी होंगे तो उसका धैर्य नष्ट हो जाता है, वह धर्मकी वृद्धि करनेसे दूर भाग जाता है तथा उसका परलोक भी बिगड जाता है ॥३५८॥

अर्थ—माया मिथ्या निदान आदि शल्योको धारण करनेवाला कोई मनुष्य किसी समय सुखी हो सकता है परन्तु चोरी करनेका निकृष्ट ध्यान करनेवाला जीव कभी सुखी नही हो सकता ॥३५९॥

अर्थ—जिस प्रकार राहुका केवल शिर ही बाकी है धड उसका अलग है, परन्तु केवल शिर रह जाने पर भी वह मूर्ख चन्द्रमाके सुवर्णको (सुन्दर वर्णको) हरण कर लेता है, गहणके समय चन्द्रमाके वर्णको ढक लेता है। उसी प्रकार अनेक पाप-रूपी सेनाके साथ रहनेवाला चोर मस्तक बाकी रहने पर भी समस्त शरीर छिन्न भिन्न हो जाने पर भी सुवर्णको अवश्य हरण करता है ॥३६०॥

अर्थ—जिस प्रकार अपथ्य सेवन करनेवाले रोगी पुरुषको सब रोग मिलकर पीडा देते है उसी प्रकार चोरी करनेवालेको

सब लोग मिलकर पीडा देते है इसमे किसी प्रकारका सदेह नही है ॥३६१॥

अर्थ—जिस प्रकार राहु की सगति करनेसे चन्द्रमाको पद-पद पर दु:ख होता है उसी प्रकार चोरकी सगति करनेसे महा-पुरुषोको भी आपत्तिया आ जाती है ॥३६२॥

अर्थ—चोरी करने रूप वृक्षके इस लोक सम्वन्धी फल वध वन्धन छेदन ताडन आदि प्राप्त होते है तथा परलोक सम्बन्धी फल विचित्र घोर नरकको प्राप्ति होती है ॥३६३॥

अर्थ—महापराक्रमी राजा सिहसेनने श्रीभूति ब्राह्मणको मन्त्रीका पद देकर महा ऐश्वर्यशाली वनाया था परन्तु चोरी करनेके कारण उसको अनन्त ससारमे परिभ्रमण करना पडा ॥३६४॥

अर्थ—सेठ वसुदत्तका पुत्र सुमित्र था जो पवित्र था और उत्तम व्यापारी था। उसने चोरीके त्यागके फलसे सबसे उन्नत पद प्राप्त किया था ॥३६५॥

अर्थ—चारित्रमोहनीय कर्मके उदयसे वा काम वासनाके उद्रेगके स्त्री पुरुपोके विगेप रमण करने की इच्छाको मैथुन कहते है इसी को अब्रह्म कहते हैं। यह अब्रह्म अत्यन्त दु:ख देनेवाला है। ऐसे इस अब्रह्मके त्याग करने को ब्रह्मचर्य व्रत कहते है ॥३६६॥

अर्थ—उत्तम पुरुपोको समझना चाहिए कि कुरूपी होना लिगका छेदा जाना नपुसक बनाया जाना या नपुसक उत्पन्न होना आदि सब ब्रह्मचर्य पालन न करनेका फल है इसलिए उत्तम पुरुषोको परस्त्री सेवनका त्यागकर स्वदार सतोष (अपनी ही स्त्री मे सन्तोष रखनेवाला) बनना चाहिए ॥३६७॥

अर्थ—अग्निकी तीव्र ज्वालासे तपाई हुई लोहेकी पुतलीका आलिगन करना अच्छा है परन्तु साक्षात् नरकको लेजाने वाली स्त्रीका आलिगन करना कही भी श्रेष्ठ नही माना जाता ॥३७४॥

अर्थ—कोई मनुष्य बडे-बडे खैर की लकडीके अगारोका सेवन करता हुआ सुखी हो सकता है परन्तु स्त्रियोको सेवन करनेवाला मनुष्य कभी किसी स्थानमे भी सुखी नही हो सकता ॥३७५॥

अर्थ—स्त्रियोके साथ क्रीडा करना, उनको आलिगन करना, विलास करना उनके साथ हस हस कर बातचीत करना आदि क्रीडाओकी बात जाने दीजिये स्त्रियोका केवल स्मरण करने मात्रसे ही अनेक प्रकारकी आपत्तिया आजाती है ॥३७६॥

अर्थ—अनेक प्रकारकी दुष्ट चेष्टाये करने वाली स्त्रिया पुत्र पिता भाई और पतिको भी सदा सन्देह की दृष्टि देखा करती है ॥३७७॥

अर्थ—ये स्त्रिया आपत्तियोकी घर है, लड़ाईकी जड है नरकका मार्ग है और शोक उत्पन्न होनेके लिए भूमि है। इसीलिए चतुर पुरुषोको इन ऐसी स्त्रियोका त्याग अवश्य कर देना चाहिए ॥३७८॥

अर्थ—जो पुरुष परस्त्री सेवनके लपटी है वे कुरूप होते है, दरिद्री होते है तिर्यच होते है और लोकमे निदनीय माने जाते है ॥३७९॥

अर्थ—परस्त्रीके समागमकी इच्छा करनेमात्रसे ही रावण अनेक दुःखोका पात्र हुआ था। तथा परस्त्रीके समागमकी इच्छाका त्याग करदेनेसे सेठ सुदर्शनको अनन्त सुखकी प्राप्ति हुई थी ॥३८०॥

अर्थ—धन धान्य, क्षेत्र, वास्तु, दासी, दास, चतुष्पद, भाड सुवर्ण आदि दस प्रकारके परिग्रहका परिमाण नियत कर उससे अधिककी इच्छा नही करना, मन वचन कायसे अधिक परिग्रह रखनेका त्याग कर देना, परिग्रह परिणाम नामका व्रत कहलाता है ।।३८१।।

अर्थ—अधिक परिग्रह रखनेसे यह जीव नरक जाता है, सदा असन्तोषी रहता है, हिसादिक आरम्भोकी वृद्धि होती है और श्रेष्ठ सुखका नाश होता है । यही समझकर बुद्धिमानोको परिग्रह का परिमाण अवश्य कर लेना चाहिए ।।३८२।।

अर्थ—जिस प्रकार अधिक बोझ हो जानेसे जहाज डूब जाता है उसी प्रकार ये ससारी प्राणी भी परिग्रह रूपी अधिक भारसे जन्म-मरण रूप ससार सागरमे अवश्य डूब जाते है, इसमे किसी प्रकारका सन्देह नही है । परिग्रहरूपी अधिक भारके दोषसे जो जो दुर्गुण वा पाप उत्पन्न होते है उनसे यह जीव यदि रसातलमे पहुच जाय तो इसमे आश्चर्यकी बात ही क्या है । पापोसे नरक मिलता ही है ।।३८३,३८४।।

अर्थ—परिग्रहरूपी पिशाचसे घिरे हुए मनुष्यमे गुण तो कही अणुके समान भी नही होते है तथा दोष मेरु पर्वतकी जडके समान चारो ओरसे फैले हुए बहुत स्थलरूपमे होते है ।।३८५।।

अर्थ—अधिक परिग्रहसे घिरे हुए मनुष्यमे सन्तोष तो बिल्कुल नही रहता है सो ठीक ही है जिसमे दावानल अग्नि लग गई है ऐसे वनमे भला वृक्ष कैसे टिक सकते हैं ।।३८६।।

अर्थ—परिग्रहके पापोसे भयभीत होकर एक राजपुत्रने सेठो के पाचसौ पुत्रोके साथ साथ परिग्रह का त्याग किया था और इसीलिए उसे बहुत ही उत्तम फल प्राप्त हुआ था ।।३८७।।

अर्थ—अधिक परिग्रहकी तृष्णासे मणिवत आदि अनेक जीवोने जन्म जन्म तक महादु ख भोगे है। यही समझकर गृहस्थोको भी अपना परिग्रह सदा घटाते रहना चाहिए ।।३८८।।

अर्थ—इस प्रकार ममत्व परिणामोको वा परिग्रहकी अधिक तृष्णाको कर्मवधका कारण समझ कर 'ये सव धन धान्य कुटव आदि पदार्थ मेरे है और मैं इन सबका स्वामी हू' इस प्रकारके ममत्व परिणामोका सर्वथा त्याग कर देना चाहिए ।।३८९।।

अर्थ—जिस प्रकार खाईसे नगरकी रक्षा होती है उसी-प्रकार समस्त जीवोको सुख देनेवाली शीलरूपी मातासे अहिसा आदि पाचो व्रतोकी रक्षा होती है । इस शीलरूपी माताके सात भेद है जो तीन गुणव्रतरूप और चार शिक्षाव्रत रूप कहलाते है यही समझ कर इस शीलरूपी माताकी सदा सेवा करते रहना चाहिए ।।३९०।।

अर्थ—पूर्व पश्चिम आदि दशो दिशाओकी जन्मभरके लिए मर्यादा नियतकर फिर उस सीमाका कभी उल्लघन न करना दिग्व्रत नामका पहला गुणव्रत कहलाता है ।।३९१।।

अर्थ—दिग्व्रतमे दशो दिशाओकी मर्यादा की जाती है तथा प्रसिद्ध प्रसिद्ध किसी पर्वत, समुद्र, नदी देश सरोवर आदिकी मर्यादा नियत करनी चाहिए । अथवा योजनोसे पृथ्वीका प्रमाण नियत कर सीमा नियत करनी चाहिए । भावार्थ—पर्वत, नदी सरोवर आदि दिग्व्रतकी प्रसिद्ध प्रसिद्ध सीमाये नियत करनी चाहिए और उससे वाहर कभी नही जाना चाहिए ।।३९२।।

अर्थ—जो पुरुष दिग्व्रत धारण कर लेता है उसको सीमाके वाहर त्रस वा स्थावर जीवोमेसे किसी जीवका घात नही होता इसलिए गृहस्थोको भी इस व्रतसे महाव्रतोका फल मिल जाता है । भावार्थ—यद्यपि गृहस्थके महाव्रत नही होते तथापि सीमा-

के वाहर किसी भी जीव का घात न होनेसे उपचारसे क्षेत्रकी अपेक्षा सीमाके वाहर महाव्रत हो जाते हैं ॥३६३॥

अर्थ—जो पुरुप दिग्व्रत नामके व्रतको धारण करता है वह पुरुप ससार भरको भक्षण करनेमे चतुर ऐसे चारो ओर फैले हुए लोभरूपी राक्षसका सर्वथा नाश कर देता है ॥३६४॥

अर्थ—दिग्व्रत धारण कर जिसने देशकी मर्यादा नियत कर ली है, अपने कामके लिये नियमित देश रख छोडा है उस देशको भी दिन पक्ष महीना आदिकी अवधि नियत कर और सक्षिप्त करना नियत समयके लिए उस सीमाको और घटा लेना देशावकाशिक व्रत कहलाता है ॥३६५॥

अर्थ—गाव, वाजार, खेत, नगर, वन, पृथ्वी और योजन आदिको श्रुतज्ञानको जाननेवाले गणधरादि देव देशावकाशिक व्रतकी सीमा कहते हे। भावार्थ—देशावकाशिक व्रतमे गाव खेत आदिकी सीमा नियत करनी चाहिये ॥३६६॥

अर्थ—जो वुद्धिमान पुरुप इस देशावकाशिक व्रतको अच्छी तरह धारण करते है उनके सीमाके वाहर सव तरहके पापोकी निवृत्ति हो जाती है। इसलिये उनको सीमासे वाहर महाव्रतोका फल प्राप्त हो जाता है ॥३६७॥

अर्थ—जो पुरुप पाप रूप उपयोगसे होने वाले बिना प्रयोजन के अनर्थोका हिसादिक पापोका सदाके लिये त्याग कर देता है उसको गणधरादिक मुनिराज अनर्थदण्ड विरति नामका व्रत कहते है ॥३६८॥

अर्थ—पापोपदेश अपध्यान हिसादान दुश्रुति और प्रमादाचरण इस प्रकार अनर्थदण्डके पाच भेद विद्वानोने वतलाये है ॥३६९॥

अर्थ—घोडा बैल आदिको नपुसक बनाओ, खेतको जोतो, यह व्यापार करो राजाकी सेवा करो इस प्रकार हिंसा रूप वचन कहनेको पापोपदेश कहते है ऐसा पापोपदेश कभी नही देना चाहिए ॥४००॥

अर्थ—शत्रुका घात किस प्रकार हो, इस नगरका नाश किस प्रकार हो, परस्त्री सेवन किस प्रकार किया जाय, इस प्रकारके विपत्तियोको उत्पन्न करनेवाले कार्यो का चिंतवन करना अपध्यान कहलाता है ।ऐसे इस अपध्यान का दूरसे ही त्याग कर देना चाहिए ॥४०१॥

अर्थ—विप ऊखल यत्र तलवार मूसल और अग्नि आदि हिसाके साधनोको देना हिसा दान कहलाता है। ऐसे हिसा करनेवाले पदार्थ कभी दूसरोको नही देने चाहिए ॥४०२॥

अर्थ—रागद्वेषको बढानेवाले तथा अज्ञानताको प्रकाशित करनेवाले ऐसे कुशास्त्रोके पढने सुननेको दुःश्रुति कहते है। बुद्धिमानोको ऐसे कुशास्त्रोके पढने सुनने को सर्वथा त्याग कर देना चाहिए। भावार्थ—जिन शास्त्रोके पठन पाठनसे सम्यग्दर्शन मलिन हो जाय वा आगम की प्रतीति विपरीत हो जाय ऐसे शास्त्रोको कभी पढना सुनना नही चाहिए। बहुतसे भोले जीव ऐसे विपरीत ज्ञानको उत्पन्न करनेवाले शास्त्रोको पढकर वा सुनकर दान पूजा सयम आदि का स्वरूप विपरीत समझ लेते है, और गृहीत मिथ्यादृष्टी होजाते है, इसलिए ऐसे ग्रन्थोको कभी पढना वा सुनना नही चाहिए। प्रश्न—निर्मूल किसे कहते है ? उत्तर—जो ग्रथ वा टीकाये भगवान सर्वज्ञदेवके कहे अनुसार गणधर प्रतिगणधर देवोके कहे अनुसार वा पूर्वाचार्योके वचनोके अनुसार लिखे जाते है वे सब समूल कहे जाते है। तथा जो ग्रन्थ वा टीकाए पूर्वाचार्योके वचनोके विरुद्ध लिखे जाते है उन्हे

निर्मूल समझना चाहिए। जैसे भगवान समंतभद्राचार्यकृत रत्नकरण्ड श्रावकाचार मूल प्रमाण है तथा उसकी की हुई आचार्य प्रभाचन्द्र कृत संस्कृत टीका और ब्रह्मदेव कृत संस्कृत टीका भी पूर्वाचार्य वचनोंके अनुसार है इसलिए प्रमाण हैं और समूल हैं। परन्तु उसी रत्नकरण्डश्रावकाचारकी भाषाटीका श्रीमान् पंडित सदासुखजी साहबने बनाई है, उसमें कितने ही प्रकरण पूर्वाचार्योंके वचनोंके अनुकूल नहीं हैं जैसे उसमें सचित्त फल फूलके चढानेका निषेध लिखा है। परन्तु जितने पूजाके ग्रन्थ हैं उन सबमें सचित्त फूल और फल चढानेका विधान मिलता है। तथा प० सदासुखजी साहबको भी सचित्त फल फूलके चढानेका ही श्रद्धान था क्योंकि उन्होंने जहा पर सचित्त फल फूलके चढानेका निषेध लिखा है उसके पहले उन्होंने यह लिखा है कि सचित्तपूजा अनादिकालसे चली आरही है। इससे यह अवश्य सिद्ध हो जाता है कि सचित्त फल फूलसे पूजाका होना पूर्वाचार्योंके अनुकूल है परन्तु फिरभी उन्होंने सचित्त फलफूल चढाने का निषेध लिखा है यह उनकी निजी रायहै औरवह रायपूर्वाचार्योंके अनुकूल नहीं है किन्तु प्रतिकूल है इसलिए उनकी यह निजी राय निर्मूल कहलावेगी। इसी प्रकार विद्वज्जन बोधकमें अनेक ऐसे विषय हैं जिनके लिए उन्होंने अनेक प्रमाण दिये हैं परन्तु फिर भी अंतमे उन विषयोंको निषेध लिखा है। चन्दन, पूजा व फल पुष्प पूजा आदिके लिये अनेक प्रमाण देकर फिर उनका निषेध लिखा है—इससे यह अवश्य मान लेना पडता है कि जब उन्होंने चंदन पूजाका सचित्त फल फूल पूजाके अनेक प्रमाण दिये हैं तो फिर उनका निषेध पूर्वाचार्योंके अनुकूल कभी नहीं हो सकता। इसलिये अनेक पूर्वाचार्योंके प्रमाण देते हुए भी जो निषेध लिखा है वह निर्मूल ही है। जो अनेक ग्रथोके प्रमाण दिये है और जो पूर्वाचार्योंके विरुद्ध नहीं है वे सब समूल है। इनके सिवाय सकली-

करण विधानका निषेध, शासनदेवता पूजामें आह्वान आदिका निपेध सव निर्मूल है। पठन पाठन वा स्वाध्यायमे आनेवाले सव ग्रथ समूल होना चाहिए। समूल होनेसे ही आचार्योका अभिप्राय समझमे आ सकता है ॥४०३॥

अर्थ—बिना प्रयोजनके वृक्षोका तोडना पृथ्वीका खोदना पानी सीचना फल पुष्पोको तोड तोड कर इकट्ठे करना आदि प्रमादाचरण वा प्रमादाचर्या कहलाती है। इस प्रमादाचर्याका भी सर्वथा त्याग कर देना चाहिए ॥४०४॥

अर्थ—मोर मुर्गा विल्ली तोता मैना कुत्ता आदि हिसा करनेवाले जीवोको कभी नही पालना चाहिए। तथा हिसा न करनेवाले कबूतर आदिकोको भी नही पालना चाहिए। अन्य जीवोको अपने आधीन कर उनकी इच्छाका रोकना है। पिजडे मे बन्द करना भी उनको दुःख देना है। इसलिये दया धारण कर किसी जीवको दु ख नही देना चाहिए ॥४०५॥

अर्थ—मोक्षकी इच्छा करनेवाले भव्य जीवोको कोयले वनाना, भाड वनाना, सोना लोहा आदि धातुओको गलानेके लिए भिट्टी वनाना, ईटोको पकाना आदि अधिक हिसाके व्यापारोका सर्वथा त्याग कर देना चाहिए ॥४०६॥

अर्थ—घोडा भैस बैल गधा आदि वोझा ढोनेवाले पशुओका व्यापार कभी नही करना चाहिए तथा अपने लाभके लिए नख हड्डी चमडा आदि पदार्थोका क्रय विक्रय नही करना चाहिए। ऐसे पदार्थोका व्यापार कभी नही करना चाहिये ॥४०७॥

अर्थ—मक्खन चर्बी शहद मद्य आदि पदार्थोको कभी नही बेचना चाहिए। तथा दास दासी और गाय भैस आदि चौपायो-के व्यापारसे जीवका कल्याण कभी नही हो सकता ॥४०८॥

अर्थ—गाडी मोटर चलवाना वा वनवाना और उनका वेचना दूरसे ही छोड देना चाहिए तथा चित्र वनाना लेपकी प्रतिमा वनवाना आदि पाप कार्योंका भी दूरसे ही त्याग कर देना चाहिए ॥४०९॥

अर्थ-समर्थशाली पुरुषोको तिल लाख आदि पदार्थोंका सग्रह नही करना चाहिए तथा वुहारी, यत्र, शस्त्र, अग्नि, मूसल, ऊखल आदि हिसा करनेवाली चीजोको दूसरे के लिए नही देना चाहिये ॥४१०॥

कर्थ—शुद्ध वुद्धिको धारण करनेवाले श्रावकोको लाख मनसिल, नील सण हल धायके फूल हरताल सिगी मोहरा विप आदि पदार्थोंका विक्रय नही करना चाहिये ॥४११॥

अर्थ—कुआ वावडी तालाव आदिको सुखानेका (पानी निकालनेका) व्यापार नही करना चाहिये भूमिका खोदना, वनस्पतियोका पेडोका काटना आदि अधिक हिसाके कार्य धर्मात्मा पुरुषोको कभी नही करने चाहिए ॥४१२॥

अर्थ—टाकी देना, चीरना, फाडना, नाक छेदना, अडकोश छेदना व फोडना और तोडना, कान काटना, नामका लोप करना, लिग वा चिन्हका नष्ट करना आदि काय अनर्थ दण्ड कहलाते है श्रावकोको ऐसे अनर्थदण्ड कभी नही करने चाहिये ॥४१३॥

अर्थ—झूठे लेख लिखाना, गीत नृत्य वाद्य देखनेके लिए व्यर्थ ही इधर उधर घूमना, दाह देना, हठ करना, जीवोंको रोक रखना, वाधना, छेदना वा अन्न पानका निरोध करना आदि कार्य श्रावकोको सदाके लिए त्याग कर देने चाहिए ॥४१४॥

अर्थ—राग द्वेष आदि परिणामोंका त्याग कर देनेसे तथा हिसादिक पाप उत्पन्न करनेवाले कार्योंका सर्वथा त्याग

कर देनेसे समता रूप परिणाम होते है उसको गणधरादिक देव सामायिक नामका व्रत कहते है ॥४१५॥

अर्थ—सामायिककी विधिमे क्षेत्र शुद्धि, काल शुद्धि, विनय शुद्धि, आसन शुद्धि, काय शुद्धि, वचन शुद्धि और मन शुद्धि इस प्रकार सात प्रकारकी शुद्धि आचार्योने बतलाई है * ॥४१६॥

अर्थ—जो स्थान, पशु, स्त्री, नपुसक, सगीत आदि रागद्वेष बढानेवाले साधनोसे रहित हो ऐसे एकान्त स्थानमे वा किसी वन मे वा सूने घरमे अथवा चैत्यालयमे सब तरहके ईर्षारूप परिणाम वा रागद्वेष रूप परिणामोसे रहित होकर प्रत्येक श्रावक को यह शुद्ध सामायिक व्रत करना चाहिए ॥४१७॥

अर्थ—जो स्थान लोगोके कोलाहलसे रहित है लोगोके समुदायसे रहित है और डास मच्छरोके उपद्रवोसे रहित है ऐसे स्थानमे सामायिक नामके व्रतको पालन करना चाहिये ॥४१८॥

अर्थ—श्रेष्ठ पर्यकासनसे बैठकर तथा रागद्वेष आदि विकार को सर्वथा छोडकर विनय पूर्वक सामायिक व्रतमे अपनी बुद्धि लगानी चाहिये ॥४१९॥

अर्थ—अपने हृदयको शुद्ध बनाकर प्रात काल मध्याह्नकाल

---

* प्रासुक निर्जीव क्षेत्रको क्षेत्र शुद्धि कहते है जिस भूमिमे हाड विष्ठा मूत्र आदि मल न हो ऐसी शुद्ध भूमिको क्षेत्र शुद्धि कहते है। दिग्दाह, उल्कापात, दुर्दिन आदि दुष्ट कालसे रहित शुद्ध कालको शुद्धि कहते है। मन वचन कायसे अनादर नही करना आवर्त, नति, आदि क्रियाओ सहित सामायिकको विनय शुद्धि कहते है। पर्यकासन पद्मासन आदि आसनोको आसन शुद्धि कहते है। मनसे आर्तरौद्र परिणामोका त्याग कर देना मन शुद्धि है। शुद्धपाठोका उच्चारण करना वचन शुद्धि है शरीरको जलसे धोना काय शुद्धि है।

और भगवानके समक्ष सामायिक करना चाहिये सिद्धान्तके जानकार गणधरादिक देवोंने सामायिकका यही समय बतलाया है ॥४२०॥

अर्थ—जिस मनुष्यकी बुद्धि सामायिकोंमें स्थिर रहती है वह मनुष्य राजा भरतके समान शीघ्र ही केवलज्ञान प्राप्त करता है ॥४२१॥

अर्थ—प्रत्येक महीनेमें दो अष्टमी और दो चतुर्दशी ऐसे चार पर्व होते हैं। प्रत्येक महीनेके इन चारों पर्वोंमें चारों प्रकार के आहारका त्याग कर देना उत्तम पोषधोपवास कहलाता है ऐसा गणधर देव कहते है ॥४२२॥

अर्थ—जिस दिन उपवास करना हो उससे एक दिन पहले मध्याह्नके समय बुद्धिमान श्रावकको शुद्ध भोजन करना चाहिये। तदनन्तर श्रीजिनालयमें पहुचना चाहिये। वहाँ पर जाकर भगवान अरहन्तदेवको नमस्कार करना चाहिये तथा इन्द्रियोके विषय से विमुख हो कर और रागद्वेषसे त्याग पूवक अपनी बुद्धिको निर्मल कर गुरुके समीपमे प्रोषधोपवास व्रतको ग्रहण करना चाहिये। भावार्थ—व्रत गुरुके समीप ही लेने चाहिये। तथा प्रोषधोपवासके दिन सब तरहके आरंभोको त्यागकर जिनालय मे ही रहना चाहिये। जिनालयमे रहनेसे इन्द्रियोके विषय भी छूट जाते हैं और रागद्वेष भी छूट जाते है। तथा ऐसी अवस्था मे ही उत्तम रीतिसे व्रतका पालन होता है * ॥४२३, ४२४॥

* प्रोषधोपवास व्रत सोलह पहरका होता है। यदि चतुर्दशी को प्रोषधोपवास व्रत करना हो तो उसे त्रयोदशी और पूर्णमासी को एकाशन करना पडेगा और चतुर्दशीका उपवास करना पडेगा। त्रयोदशीके दिन एकाशन कर उसको मन्दिरमे जाना चाहिये और वही पर गुरुसे प्रोषधोपवास व्रत लेना चाहिये।

अर्थ—प्रोषधोपवास व्रतको पालन करनेवाले श्रावकको किसी एकान्त स्थानमे रहना चाहिए। पापरूप समस्त कार्योका त्याग कर देना चाहिए। इन्द्रियोके समस्त विपयोका त्यागकर

ऐसा करनेसे दो पहर तो त्रयोदशीके होते है चार पहर रातके होते है। चार पहर चतुर्दशीके दिनके होते है चार पहर चतुर्दशी के रातके होते है तथा दो पहर पूर्णमासीके दिनके होते है। इस प्रकार सोलह पहर तक चारो प्रकारके आहारका त्याग हो जाता है। पूर्णमासीको भी वह एकाशन ही करता है। यह उत्कृष्ट व्रत है। मध्यमव्रत बारह पहरका होता है। इसमे त्रयो-दशी और पूर्णमासीको एकाशन नही होता। किन्तु त्रयोदशीके दिन सूर्यास्तसे दो घडी पहले भोजन, पानीसे निवृत्त होकर जिनमन्दिरमे जाकर गुरुसे उपवास ग्रहण करता है। जिनमदिर चार पहर रातके चार पहर चतुर्दशीके दिनके और चार पहर चतुर्दशीके रातके विताकर पूर्णमासीको सवेरे ही पूजासे निवृत्त होकर घर आकर आहार कर लेता है। इस प्रकार बारह पहरका मध्यम उपवास कहलाता है। जघन्य उपवास आठ पहरका कहा गया है। जो श्रावक त्रयोदशीको शामके समय जिनालयमे जाकर गुरुसे अपवास ग्रहण नही करता चतुर्दशीको प्रातःकाल जाकर उपवास स्वीकार करता है तो उसके आठ पहरका ही अनशन होता है। चार पहर चतुर्दशीके दिनके और चार पहर चतुर्दशीके रातके इस प्रकार आठ पहर होते है। जो श्रावक चतु-र्दशीके दिन गर्म जल पी लेता है उसके वह उपवास अनुपवास कहलाता है। जो इस प्रकारके उपवास ग्रहण नही कर सकते उन्हे दिनका एकवारका भोजन छोड देना चाहिये अर्थात उन्हे दिनमे एकवार भोजन कर एकाशन करना चाहिये।

भगवान समन्तभद्र स्वामीने अपने रत्नकाण्ड श्रावकाचारमे

देना चाहिये और मनोगुप्ति वाक्‌गुप्ति और कायगुप्तिको पालन करते हुये रहना चाहिये ॥४-५॥

लिखा है 'चतुराहार विसर्जनमुपवास. प्रोषध. सकृद्भुक्ति ।'' अर्थात् चारो प्रकारके आहारका त्याग कर देना उपवास है और एकबार भोजन करना प्रोषध है। कहीं कहीं पर शास्त्रोंमे प्रोषध. सह उपवास प्रोषधोपवास. ऐसा अर्थ भी लिखा है। ऐसा अर्थ करनेसे एकाशनको ही प्रोषधोपवास संज्ञा हो जाती है। इसका भी कारण यह है कि एकाशन करनेसे एक बारके भोजनका त्याग हो जाता है।

राजवार्तिकके नौवे अध्यायमे लिखा है कि 'तदनशनद्वेधा व्यवतिष्ठते कुत अवधृतानवधृतकालभेदात् । तत्र अवधृतकाल सकृद्भोजन चतुर्थभक्तादि । अनवधृतकालमादेहोपरमात् ।'' अर्थात—उपवासके दो भेद होते है अवधृतकाल उपवास अर्थात् कालकी मर्यादा लेकर उपवास करना और अनवधृतकाल उपवास मरण पर्यन्त होता है इसकी कोई मर्यादा नही है। एकाशन करना एक उपवास करना दो उपवास करना आदि अवधृतकाल उपवास कहलाता है। षष्ठोपवासका अर्थ—धारण पारण पूर्वक दो उपवास वा वेलाका होता है। इसमे एक भोजन धारणके दिन, दो वारका भोजन पहिले उपवासके दिन, दो वारका भोजन दूसरे उपवासके दिन और एक वारका भोजन पारणाके दिन छूट जाता है इसीलिए इसको षष्टोपवास वा षष्ट भक्त कहते हैं। इससे भी यह सिद्ध हो जाता है कि एकाशनको भी प्रोषधोपवास संज्ञा होती है।

भगवान समन्तभद्र स्वामीने लिखा है कि —

पर्वदिनेषु चतुर्ष्वपि मासे मासे स्वशक्तिमनिगुह्य ।
प्रोषधनियमविधायी प्रणधिपर. प्रोषधानशन ।

अर्थ—प्रत्येक महीनेके चारो पर्वके दिनोंमें अपनी शक्तिको

अर्थ—इस प्रकार दोपहरसे लेकर शाम तक उस दिनको व्यतीत करे। सायकालके समय सामायिक प्रतिक्रमण आदिकी सब विधि कर और हृदयको निर्मल वनाकर शुद्ध बिछौने पर रात्रिको व्यतीत करना चाहिये ॥४२६॥

अर्थ—प्रातःकाल उठकर प्रासुक जलसे शरीरकी शुद्धिकर सामायिक प्रतिक्रमण आदि प्रात'कालकी क्रिया करनी चाहिये फिर जल चदन अक्षत आदि अष्ट द्रव्यसे भगवान जिनेन्द्रदेवकी पूजा करनी चाहिये। भावार्थ—प्रोषधोपवासमे यद्यपि स्नान करने का त्याग है तथापि पूजा करनेके लिये उसे अवश्य स्नान करना चाहिये शृगार करनेके लिये स्नानका त्याग है। पूजाके लिये नही। पूजाके लिये उसे अभिषेक भी करना चाहिये ॥४२७॥

न छिपाकर नियमपूर्वक प्रोषध करनेवाला प्रोषधोपवासको धारण करनेवाला गिना जाता है। यहापर प्रोषध शब्द ही दिया है। जिसका अर्थ एकाशन होता है। इससे भी यह सिद्ध होता है कि प्रोषधोपवास प्रतिमामे भी प्रोषधका ही नियम बतलाया है।

अमितगति श्रावकाचार मे लिखा है —

उपवासानुपवासैकस्थानेष्वेकमपि विधत्ते यः।
शक्तत्यनुसारपरोऽसौ प्रोपधकारी जिनैरुक्त.।

अर्थात्—उपवास, अनुपवास और एकाशनमेसे जो अपनी शक्तिके अनुसार एकको भी धारण करता है उसको भगवान् जिनेन्द्रदेवने प्रोपध करनेवाला वतलाया है। यहांपरसमझनेको वात यह भी है कि उपवास अनुपवास करनेवाली भी प्रौपध करनेवाला ही वतलाया है। इससे सिद्ध होता है कि जहापर उपवास और अनुपवासका कथन है वही पर एकासनका कथन है। इसलिए प्रोपधोपयास व्रतमे एकाशन भी किया जाता है।

अर्थ—जो विधि ऊपर बतलाई है उसी विधिसे उस दूसरे दिनको तथा उस दूसरी रातको व्यतीत करना चाहिये तथा उसी प्रकार तीसरे दिनका आधा भाग व्यतीत करना चाहिये। यह सब समय बड़े प्रयत्नसे धर्मध्यानमें लीन होते हुए व्यतीत करना चाहिये ॥४२८॥

अर्थ—आगम रूपी नेत्रको धारण करनेवाला जो भव्य जीव ऊपर लिखे अनुसार सोलह पहरोको व्यतीत करता है। वह भव्य पुरुष सुन्दर मोक्षरूपी स्त्रीके हृदयपर हारके समान सुशोभित होता है ॥४२९॥

अर्थ—प्रोपधोपवास करनेवाले पुरुपको प्रोपधोपवाससे दिन स्नान नही करना चाहिये, चन्दन नही लगाना चाहिये, शरीरकी शोभा नही बढानी चाहिये, हुलास नही सूघना चाहिये, स्त्री-सेवन नही करना चाहिये और सब तरहके पापकर्मोंका त्याग कर देना चाहिये ॥४३०॥

अर्थ—जो पुरुप सब तरहके आरम्भोका त्याग कर एक भी उपवास कर लेता हे। वह पुरुप अपने अनेक कर्मोका नाश कर मोक्षरूपी अक्षय सुखकी प्राप्ति करता है ॥४३१॥

अर्थ—अपनी शक्तिके अनुसार भोगोपभोगमे आनेवाले पदार्थोकी सख्या नियत कर लेना भोगोपभोग परिमाण नामका तीसरा गुणव्रत कहलाता है ॥४३२॥

अर्थ—गणधरादिक देव स्नान भोजन ताम्बूल आदि एक ही वार भोगनेमे आनेवाले पदार्थोको भोग कहते है तथा वस्त्र, स्त्री, आभूपण, शय्या, आसन आदि वार वार भोगमे आनेवाले पदार्थो को उपभोग कहते है ॥४३३॥

अर्थ—भोगपभोगमे आनेवाले पदार्थोका त्याग यम ओर नियमके भेदसे दो प्रकार किया जाता है। बिना कालकी मर्यादा

के जो सदाके लिये त्याग किया जाता है, उसको यम कहते हैं और कालकी मर्यादासे जो त्याग किया जाता है उसको नियम कहते है ॥४३४॥

अर्थ—जो भव्य पुरुष मन, वचन कायसे भोगोपभोग पदार्थो का परिमाण नियत कर लेता है, उस पुरुषके साथ मोक्षरूपी स्त्री सदा रमण करनेकी इच्छा करती रहती है ॥४३५॥

अर्थ—जो पुरुष अपने धनका कुछ भाग अतिथियोके लिये देता है उसको ससार भरमे उत्तम गणधरादिक देव अतिथि सविभाग व्रत कहते है ॥४३६॥

अर्थ—जो व्रती पुरुष शिक्षाके लिये बिना वुलाया अपने घर पर आवे उसको शब्द अर्थके जाननेवाले गणधरादिक देव अतिथि कहते है। भावार्थ—मुनि ऐल्लक क्षुल्लक आदि पात्र भिक्षाके लिये बिना बुलाये ही घर पर आते है। इसलिये वे अतिथि कहलाते है ॥४३७॥

अर्थ—सात गुणोसे सुशोभित दाताको सब प्रकारके आरम्भो से रहित मुनियोका आदर सत्कार नवधा भक्तिपूर्वक करना चाहिये। भावार्थ—मुनि ऐल्लक आदिको नवधा भक्ति पूर्वक दान देना चाहिये ॥४३८॥

अर्थ—दरवाजे पर खडे होकर पडगाहन करना ऊचे आसन पर विराजमान करना, पैर धोना, पूजा करना, नमस्कार करना वचन शुद्धि, कायशुद्धि, मनशुद्धि और आहारशुद्धि रखना तथा मुहसे कहना यह नौ प्रकारकी विधि कहलाती है, इसीको नवधा भक्ति कहते है ॥४३९॥

अर्थ—इस लोकके किसी फलकी इच्छा न करना, क्षमा धारण करना, कपट न रखना, ईर्ष्या न रखना, विषाद नहीं

करना, हर्षित होना और अहकार नही करना ये सात दाताके गुण कहलाते है ।।४४०।।

अर्थ—आचार्यो ने पात्रदान और अपात्रदानके भेदसे आहार-दानके दो भेद बतलाये है। उनमे भी पात्रके तीन भेद है। इन तीनो प्रकारके पात्रोको दान देना मोक्षका देनेवाला है और सर्वथा योग्य है ।।४४१।।

अर्थ—मुनिराज उत्तम पात्र है सम्यग्दशन और अणुव्रतोको धारण करने वाले श्रावक मध्यम पात्र है और सम्यग्दृष्टी श्रावक जघन्य पात्र है इस प्रकार पात्रके तीन भेद है ।।४४२।।

अर्थ—जो सम्यग्दर्शनसे रहित है परन्तु अनेक प्रकारके तप-श्चरण करने मे निपुण है ऐसा पुरुष यदि अत्यन्त मनोहर हो तथापि जिनेन्द्रदेव उसे कुपात्र ही कहते है ।।४४३।।

अर्थ—जो मनुष्य सम्यग्दर्शनसे रहित है जिसका हृदय समस्त कषायोसे कलुषित हो रहा है और जो कोई किसी प्रकार-के व्रतोका पालन नही करता तथा जो मिथ्यात्वसे दूषित है ऐसे पुरुषको अपात्र कहते है ।।४४४।।

अर्थ—जिनके हृदयमे दया विराजमान है ऐसे महाशक्ति-शाली मुनि आहार तो छोड देते है परन्तु वे दीनता पूर्वक शरीर की करुणा पूर्वक और अपने निमित्त बना हुआ आहार कभी ग्रहण नही करते है। मुनिराज इस शरीरके द्वारा रत्नत्रयकी पूर्णता करनेके लिये आहार लेते है। छह कायिक जीवोकी विराधनाके लिए आहार नही लेते ।।४४५।।

अर्थ—जो गृहस्थ भक्ति से रहित है, अहकार सहित है, जिनके हृदयमे करुणाका सर्वथा अभाव है और जो दीन है ऐसे गृहस्थोके घरमे मुनिराज कभी आहार नही लेते है ।।४४६।।

अर्थ—जिस समुद्रमे वायुके वेगसे वडी बडी लहरे उठ रही है ऐसे समुद्रमे ये जीव जहाजसे अवश्य पार हो जाते है। उसी प्रकार इस ससारमे पडे हुए मनुष्य पात्रदानसे बहुत शीघ्र पार हो जाते है ॥४४७॥

अर्थ—इस प्रकार तोन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत ये सात शील महामाताए कहलाती है। ये शील रूपी सातो महामाताए महा सुख देनेवाली है और सर्वोत्तम है, इसलिये चतुर पुत्रको वडी शीघ्रताके साथ प्रतिदिन इनका सेवन करना चाहिए ॥४४८॥

अर्थ—किसी प्रकार भी जिनका निवारण न हो सके और जो मृत्युके ही कारण जान पडे ऐसा दुष्काल पड जाने पर, कठिन व्याधि आजाने पर, असह्य वृद्धावस्था आजाने पर, तीव्र शत्रुता को धारण करनेवाले किसी शत्रुको सेनाके आजाने पर, तपश्चरणके नाश होनेके कारण मिल जाने पर और मृत्युका समय निकट आजाने पर ससारके भयभीत हुए मनुष्योको सल्लेखना अवश्य धारण करनी चाहिये ॥४४९,४५०॥

अर्थ—गणधरादिक देवोने दान शील भाव और तपका फल समाधिमरण ही बतलाया है। इसलिए समाधिमरण धारण करने के लिए सबसे अधिक प्रयत्न करना चाहिये ॥४५१॥

अर्थ—पुत्र मित्र स्त्री आदि कुटम्बियोके प्रेमका त्याग कर देना चाहिये, धनादिकमे मोह छोड देना चाहिये और समस्त शत्रुओसे द्वेष छोड देना चाहिये। तदनन्तर समाधिमरण धारण करना चाहिये ॥४५२॥

अर्थ—जो पाप स्वयं किये है वा कराये है अथवा जिनकी अनुमोदना की है ऐसे समस्त पापोकी आलोचना गुरुके समीप करनी चाहिये और फिर शल्य रहित होकर समाधिमरण धारण करना चाहिये ॥४५३॥

अर्थ—पच नमस्कार मन्त्रका स्मरण करते हुये और शुद्ध चैतन्य स्वरूप अपने आत्माका वा परमात्माका चितवन करते हुये उस क्षपकको दु ख शोक आदि सबसे रहित होकर बडे आनन्दके साथ शरीरका त्याग कर देना चाहिए ॥४६१॥

अर्थ—इस प्रकार आचार्योंने यह सबसे उत्तम श्रेष्ठ काय सल्लेखनाका स्वरूप कहा है। इस सल्लेखना वा समाधिमरणको धारण करनेवाला श्रावक मोक्षरूप परम गतिको प्राप्त करता है ॥४६२॥

अर्थ—इस प्रकार मैने श्रावकोके तेरह प्रकारके चारित्रका निरूपण किया है। ये तेरहो प्रकारके व्रत अतिचार रहित पालन करने चाहिए। इन सव व्रतोके अतिचारोकी सख्या सत्तर है। प्रत्येक व्रतके पाच पाच अतिचार है इस प्रकार बारह व्रतोके साठ अतिचार है तथा पाच सम्यग्दर्शनके और सल्लेखनाके इस प्रकार सत्तर अतिचार होते है ॥४६३॥

अर्थ—तत्त्वार्थ सूत्रके सातवे अध्यायमे इन समस्त अतिचार का निरूपण किया है। इसीलिए यहा पर उनका वर्णन नहीं किया। सातवे अध्यायके कथनसे जो बचे हुए समाचार है वे ही यहा इस ग्रन्थमे निरूपण किए है * ॥४६४॥

---

* यह ग्रन्थ भगवान उमास्वामीका बनाया हुआ है तथा मोक्षशास्त्र वा तत्त्वार्थ सूत्र भी भगवान उमास्वामीका बनाया हुआ है। भगवान उमास्वामीने अपने तत्त्वार्थसूत्रमे इन सत्तर अतिचारोका निरूपण बहुत अच्छी तरहसे किया है। इसीलिये आचार्यने इस श्लोकमे अतिचारोका हवाला दे दिया है। जो विषय अपने ही किसी ग्रन्थमे कहा जा चुका है, उसी विषयको दूसरे ग्रथमे लिखना शोभा नही देता। इसीलिए आचार्य महाराजने अतिचार नही कहे हैं। तत्त्वार्थसूत्रमे पूजा प्रकरण वा

अर्थ—इस ससारमे इसी प्रकारके जो पाप कर्म है तथा दुष्ट वा नीच लोगोका ससर्ग है वह सब दूरसे ही छोड देना चाहिये ॥४७०॥

अर्थ—उत्तम पुरुषोको देवशास्त्र गुरु माता पिता आदि गुरुजनो की सदा सेवा करते रहना चाहिए, ज्ञानका पठन पाठन सदा करते रहना चाहिए, अपने आत्माका कल्याण सदा करते रहना चाहिए और आत्माका अकल्याण करनेवाले कार्योका सदाके लिए त्याग कर देना चाहिए ॥४७१॥

अर्थ आत्माका कल्याण करना चाहिए और अकल्याण वा अहितका त्याग कर देना चाहिए यह बात ससार भरमे प्रसिद्ध है। फिर भी ये ससारी लोग हित करने मे प्रमाद करते है यह बडे दुःखकी बात है। अथवा अनादि कालसे लगे हुए मोहसे यह मनुष्य क्या क्या अहित नही करता है ? अर्थात् मोहके उदयसे यह जीव सब प्रकारके अहित कर बैठता है ॥४७२॥

अर्थ—जो मनुष्य भक्ष्य अभक्ष्यके विचार करनेमे अज्ञानी है, भक्ष्य अभक्ष्य का कुछ विचार नही करता, इसी प्रकार करने योग्य वा न करने योग्य कार्योका भी कुछ विचार नही करता और जो शास्त्रोको सुनता हुआ भी अज्ञानी बना रहता है। वह मनुष्य भला पाप क्यो नही करेगा ? अवश्य करेगा। भावार्थ—भक्ष्य अभक्ष्यका विचार न कर सबका भक्षण करना भी पाप है कर्तव्य अकर्तव्य का विचार न कर अन्याय अनर्थ करना, व्यसन सेवन करना, अधर्मकी प्रवृत्ति करना श्रावकाचार कुलाचार आदिके प्रतिकूल चलना आदि भी सब महा पाप है। तथा रात-दिन शास्त्रोका श्रवण करते हुए भी आत्माका कल्याण न करना आत्माका स्वरूप न पहचानना मिथ्याज्ञानी ही बने रहना महापाप समझना चाहिए। इसीलिए आचार्य कहते है कि जो विचार रहित होकर भक्ष्य अभक्ष्य सबका भक्षण करता है वह भी सदा

पाप उत्पन्न करता है जो अकर्तव्य कर्मों का त्याग न कर अनेक प्रकारके अन्याय अनर्थ करता रहता है। वह भी महापाप करता रहता है इस प्रकार ऐसे लोगमहा पाप ही उत्पन्न करते रहते है। इसलिए श्रावकका कर्तव्य है कि वह अभक्ष्य भक्षणका त्याग कर शुद्ध भोजन करे, न करने योग्य अन्याय अनर्थो के करनेका त्याग कर देवपूजा करना न्याय पूर्वक जीविका रखना आदि न्यायोचित कार्य करे और शास्त्रो-को पढकर वा सुनकर उनके अनुकूल-प्रवृत्ति करे। यही शास्त्रो के पढने का फल है। और यही उत्तम कुल तथा उत्तम धर्म धारण करने का फल है ॥४७३॥

अर्थ - इसप्रकार इस भगवान उमास्वामी विरचित श्रावका-चार के द्वारा समझाया हुआ भव्य जीव चाहे पत्थरके समान कठिन हो तथापि वह थोडे ही दिनोमे कोमल हो जाता है वह अपने आत्माकी वृद्धि कर लेता है धर्मात्मा हो जाता है और अनेक प्रकारके सुखोको प्राप्त हो जाता है ॥४७४॥

अर्थ—जिसके सुननेसे और जिसके अनुसार चलनेसे समस्त पापोके समूह नष्ट हो जाते है तथा जो अत्यन्त निर्मल ज्ञानका घर है ऐसा यह श्रावकाचार आचार्य उमास्वामीने बनाया है। विनयके भारसे जिनका शरीर नम्रीभूत हो रहा है ऐसे श्रावको को यह श्रावकाचार सदा सुनते रहना चाहिए और निर्मल बुद्धि को पाकर अपना सम्यग्ज्ञान सदा बढाते रहना चाहिए ॥४७५॥

अर्थ—इस प्रकार मैंने यह श्रावकोके चरित्र का निरूपण इस छठे अध्यायमे किया है। इसके सिवाय अन्य सब विषय मेरे बनाये हुये मोक्ष शास्त्रमे देख लेना चाहिए ॥४७६॥

इस प्रकार आचार्य वर्य भगवान् श्री उमास्वामी
विरचित उमास्वामि श्रावकाचार विद्वद्वर
प० हलायुध जी कृत भाषा वचनिका
समाप्त हुई।

परिशिष्ट न० १

जिनप्रतिमाका लक्षण

शान्तप्रसन्नमध्यस्थनासाग्रस्थाविकारकृत् ।
सम्पूर्णभावरूपानु विद्धाग लक्षणान्वितम् ॥
रोद्रादिदोषनिर्मुक्तप्रातिहार्यांकियक्षयुक् ।
निर्माप्य विधिना पीठे जिनविम्ब निवेशयेत् ॥

—प्रतिष्ठासारोद्धार

अर्थ--जिसके मुखकी आकृति शात हो, प्रसन्न हो, मध्यस्थ हो, नेत्र विकार रहित हो, दृष्टि नासिकाके अग्रभाग पर हो, जो केवलज्ञानके सम्पूर्ण भावोसे सुशोभित हो, जिसके अग उपाग सब सुन्दर हो, रौद्र आदि भावोसे रहित हो, आठों प्रतिहार्योसे विभूषित हो, चिह्नसेसुशोभित हो यक्ष यक्षी सहित हो औरध्यानस्थ हो इस प्रकारसे शुभ लक्षणोसे सुशोभित जिनप्रतिमा वनवाना चाहिए और प्रतिष्ठा करा कर पूजा करनी चाहिये। जिन प्रतिमा मे ये लक्षण न हो वह अरहन्तकी प्रतिमा नही कही जा सकती ।

प्रातिहार्याष्टकोपेता यक्ष यक्षीसमन्विताम् ।
स्वस्वलाच्छनसयुक्ता जिनार्चा कारयेत्सुधीः ॥

—जिनेन्द्र कल्याणाभ्युदय

अर्थ-जो आठ प्रतिहार्योसे सुशोभित है, यक्ष यक्षी सहित है और अपने अपने चिह्नोंसे सुशोभित है ऐसी प्रतिमा बुद्धिमानो को वनवानी चाहिए ।

यक्ष च दक्षिणे पार्श्वे वामे शासनदेवताम् ।
लाच्छनं पानपीठाधः स्थापयेद् यस्य यद्भवेत् ॥

—वसुनन्दी प्रतिष्ठापाठ

अर्थ—जिनप्रतिमाके दाई ओर यक्षकी मूर्ति होनी चाहिए बाई ओर शासनदेवता अर्थात् यक्षीकी मूर्ति होनी चाहिए और सिहानसके नीचे जिनकी प्रतिमा हो उनका चिन्ह होना चाहिए ।

स्थापयेदर्हता छत्रत्रयाशोकप्रकीर्णके ।
पीठ भामण्डल भाषा पुष्पवृष्टि च दुन्दुभिम् ॥
स्थिरेतराचयोः पादपोठस्थायो यथायथम् ।
लाञ्छन दक्षिणे पार्श्वे यक्षो यक्षी च वामके ॥

अर्थ—अरहन्त प्रतिमाके निर्माणके साथ साथ तीन छत्र, अशोकवृक्ष, सिहासन, भामण्डल, चमर दिव्यध्वनि, दुन्दुभि, पुष्पवृष्टि ये आठ प्रातिहाय अकित होने चाहिए। प्रतिमा चाहे चल हो चाहे अचल हो, परन्तु उनका चिन्ह सिहासनके नीचे होना चाहिए। दाहिनी ओर यक्ष और बाईं ओर यक्षी होनी चाहिये।

अथ विम्ब जिनेन्द्रस्य कर्तव्य लक्षणान्वितम् ।
कृत्वयतनसस्थान तरुणाग दिगम्वरम् ॥
मूलप्रमाणपर्वाणा कुर्यादष्टोत्तर शतम् ।
अङ्गोपागविभागश्च जिनविम्बानुसारत· ॥
प्रातिहार्याष्टकोयेत नम्पूणावयय शुभम् ।
भावरूपानुविद्वाग कारयैद्बिम्बमर्हत. ॥
प्रातिहार्यं विना शुद्ध सिद्ध विम्बमपीदृशम् ।
सूरीणा पाठकाना च साधूना च यथागमम् ॥

अर्थ–भगवान जिनेन्द्रदेवकी प्रतिमा लक्षण सहित बनवानी चाहिये। जो सम चतुरस्र सस्थान ही, तरुणावस्थाकी हो, दिगम्बर हो, उसका आकार वास्तुशास्त्रके अनुसार दशताल प्रमाण हो उसके आकारके एकसौ आठ भाग हो, अग उपागोका विभाग प्रतिमाके अनुसार ही होना चाहिये जो। आठ प्रतिहार्यो से सुशोभित हो, जिसके सम्पूर्ण अवयव हो। जो शुभ हो उसका शरीर केवलज्ञानको प्रकाशित करने वाले भावोसे परिपूर्ण हो, इस प्रकार अरहन्तकी प्रतिमा बनवानी चाहिए। यदि उस प्रतिमा के साथ आठ प्रातिहार्य न हो तो वह सिद्धोकी प्रतिमा हो जाती

है। आचार्य उपध्याय और साधुओकी प्रतिमा भी आगमके अनुसार बनानी चाहिये।

कारयेदर्हतो विम्ब प्रातिहार्यसमन्वितम्।
यक्षाणा देवताना च सर्वालकारभूषितम्।
स्ववाहनायुधोपेत कुर्यात्सर्वागसुन्दरम्।

अर्थ–जिनप्रतिमा आठ प्रतिहाय सहित होनी चाहिये। तथा यक्ष यक्षी सहित होनी चाहिए। वे यक्ष और यक्षी समस्त अलकारोसे सुशोभित होने चाहिए, अपने-अपने आयुध और वाहन सहित हो तथा सर्वांग सुन्दर हो।

सैद्ध नु प्रातिहार्यैकयक्षयुग्मोज्झित शुभम्।

अर्थ—जिन प्रतिमामे आठ प्रतिहार्य न हो और यक्ष यक्षी न हो उनको सिद्ध प्रतिमा कहते हैं।

अष्टप्रातिहार्यसमन्वितार्हत्प्रतिमा तद्ररहिता सिद्धिप्रतिमा

अर्थ–जिस प्रतिमामे आठ प्रतिहार्य हो वह अरहन्तकी प्रतिमा है तथा जिसमे प्रतिहार्य नही है, वह सिद्ध प्रतिमा है।

प्रतिष्ठाके समस्त ग्रथमे अरहन्त प्रतिमाका यही स्वरूप बतलाया है। त्रिलोकसार राजवर्तिकमे भी प्रतिमा का यही स्वरूप है। यथा—

सिहासणादि सहिया विणीयकुन्तल सुवज्जमयदता।
विदुय हरदा किसलय सोहापर इत्थमायतला॥
सिरी देवी सुअदेवी सव्वापासण कुमार जक्खाण।
रूवाणि जिणयासे मगलट्ठविह माविहोई॥ —त्रिलोकसार

अर्थ–जिनप्रतिमाके निकट इनचारित्रका प्रतिविम्ब होइ है। यहापर प्रश्न–जो श्री देवी तो धनादिक रूप है और सरस्वती जिनवाणी है। इनका प्रतिविम्ब कैसे होइ है। ताका समाधान-श्री और सरस्वती ये दोऊ लोकमे उत्कृष्ट हैं तात इनका देवागन

का आकार रूप प्रतिबिंब होई है। बहुरि दोऊ यक्ष विशेष भए है ताते तिनके आकार हो हैं। आठ मगल द्रव्य हो।

—पडित टोडरमलजी

वसुविंदु व श्री जयसेनप्रतिष्ठापाठमे भी अरहन्त की प्रतिमा का स्वरूप लिखा है। पाठकोको देखनेके लिये वह भी फिर दुवारा लिख देते हैं।

प्रातिहार्याष्टकोपेत सम्पूर्णावयय शुभम्।
भावरूपानु विद्धाग कारयेद्बिम्बमर्हत ॥

अर्थ—भगवान अरहन्तदेवका प्रतिबिम्ब आठ प्रतिहार्य सहित होना चाहिए, समस्त अवयवो सहित होना चाहिए शुभ होना चाहिये, उसका समस्त शरीर केवलज्ञानके स्वरूपको प्रकाशित करनेवाले भावोसे सुशोभित होना चाहिए। भगवान अरहत देवका प्रतिबिम्ब इस प्रकार बनवाना चाहिये।

जो लोग यक्ष यक्षियोको शासनदेव नही मानते वे लोग भी इस वसुविंदु प्रतिष्ठापाठको मानते हैं इसमे भी अन्य प्रतिष्ठा पाठोके समान ही अरहत प्रतिमाका स्वरूप आठ प्रतिहार्य सहित लिखा है। इससे यह अवश्य सिद्ध हो जाता है कि जिस प्रतिमा मे आठ प्रतिहार्य अकित न हो वह सिद्धोकी प्रतिमा है। अरहतकी प्रतिमामे आठ प्रतिहार्य यक्ष यक्षी और चिन्ह अवश्य होना चाहिए।

भगवान पूज्यपादाचार्यने दशभक्ति व भक्तिपाठ लिखा है। उसमे पचगुरु भक्तिके पाठमे लिखा है—'अट्ठमहापाडिहेरसजुत्ताणा अरहताणा' अर्थात् अरहत पाठ प्रतिहार्य सहित होते हैं उनकोमै नमस्कार करता हूँ।

इसप्रकार सक्षेपसे प्रतिमाका लक्षण लिखा है। प्राचीन प्रतिष्ठित समस्त प्रतिमाये यक्ष यक्षी अष्ट प्रतिहार्य सहित ही होती है। ऐसी प्रतिमाये अनेक स्थानोमे विराजमान है। इसलिए प्रतिमाये अष्ट प्रतिहार्य और यक्ष यक्षी सहित ही बननी चाहिए। शास्त्रोक्त सिद्धात यही है।

श्री १००८ देवाधिदेव भगवान

महावीर का पावन संदेश

और देशना विवेक बहत्तरी

※

१ पराधीनता है बुरी, पराधीन अति दीन ।
सच्ची आतम स्वतन्त्रता, उस बिन नही स्वाधीन ।।

२ बिना भेद विज्ञान के, सारा जग अज्ञान ।
आतम के अनुभव बिना, हो नही भेद विज्ञान ।।

३ स्वसबंध है आतमरस, निज मे है भरपूर ।
खोजे बिन मिलता नही, जो खोजे सो शूर ।।

४ नरभव को जो कामसुख, सुरभव को बड़ भाग ।
वीतराग सुख अतुल के, सम नही अनेते भाग ।।

५ जहाँ सत जागते, सुप्त वहॉ जगजीव ।
जग प्राणी जागे जहॉ, सोवे सत सदीव ।।

६ इक दिन मे कुछ मिनिट तो, लेवो आतम का स्वाद ।
एक वर्ष ऐसा करो, तज कर सर्व विवाद ।।

७ आवे यदि आनन्द तो, समय बढ़ाते जाव ।
निज रस के आस्वाद का, होगा अतुल प्रभाव ।।

८ क्या रचरूप मेरा वना, मैं हूँ कौन स्वरूप ।
अब जाना मुझको कहाँ, क्या पडना है कूप ।।

९ आत्मा मे रंक नही, मै हूँ अनुपम भूप ।
जग विषयो की चाह मे, बिगड गया मम रूप ॥

१० भूप होय इन्द्रिय विषय, क्यो मै मागू भीख ।
सुखाभास के अर्थ अब, क्यो मै मागू भीख ॥

११ यह विचार जब आयगा, होगा परमानन्द ।
मजा आतम का आयगा, मिटे सकल दु.ख द्वन्द ॥

१२ पुत्र मित्र सुत दार सब, सर्व स्वार्थ के लोग ।
ज्ञाता नहि परमार्थ के, है अनिष्ट संयोग ॥

१३ इस अनिष्ट संयोग मे, करो न अब कुछ प्रीति ।
प्रीति करै दुःख ही लहे, यहि जगत की रीति ॥

१४ घर मे भी यदि वास हो, रहो सलिल कज भाति ।
आत्म साधना रत हो, करो सफल नर जाति ॥

१५ विषय इन्द्रियो के बुरे, इनके जो आधीन ।
किंकर के भी दास वे, बने रहे नित दीन ॥

१६ सबसे ऊंचे त्यागि जन, कुछ नही जिनके चाह ।
चाह गई चिता मिटी, चले न इन्द्रिय राह ॥

१७ जो आशा के दास है, वे सब जग के दास ।
जिनकी आशा दास है, खडा रहे जग पास ॥

१८ सब कुछ देते हैं नही, जिनके कुछ नहि पास ।
पर्वत से नदियां बहे, नही उदधि से आस ॥

१९ सुख दुःख भय वैभव सुयस, होय कर्म आधीन ।
नृप न धनिक मन्त्री, सुबुध करै कर्म ही दीन ॥

३१ पर नारी पर पुरुष का, सेवन पापाचार ।
कलह द्वेष झगड़े बढ़े, फैले अत्याचार ॥

३२ यथाशक्ति त्यागा करो, दुखद परिग्रह भार ।
परिग्रह ही दुख मूल है, परिग्रह ही संसार ॥

३३ इन पापों के त्याग का, धर्म लोक में नाम ।
बनो धर्म निरपेक्ष यदि, मिले न सुख में साम ॥

३४ यही सार की बात है, ज्यादा कहना व्यर्थ ।
जो मुमुक्षु जन हों उन्हें, विषय त्याग ही सार्थ ॥

३५ अपने मतलब के लिये, करो न पर का घात ।
यही देश हित है बड़ा, यही सार मय बात ॥

३६ जो निज मतलब से करे, पर के प्राण विछोह ।
वह निज पर का घात है, वह ही देशद्रोह ॥

३७ मास और मदिरा सहद, अरु क्षीरोफल पाच ।
इनके सेवन से लगे, मानवता मे आंच ॥

३८ भोजन करना रात मे, पापो का है मूल ॥
प्राणिघात वह रोग ही, उभय लोक मे शूल ॥

३९ जीवो की हिसा दुखद, करती वैर विरोध ।
जीवो की पालो दया, मानवता का बोध ॥

४० छान वस्त्र से जल पियो, यहि सुगुरु उपदेश ।
पच प्राप्त की नमन से, मिट जाते सब क्लेश ॥

४१ हिसा मे नही धर्म है, नही देश कल्याण ।
सार तत्व का जानिये, मूल अहिसा प्राण ॥

४२ भारत की सस्कृति रही, सदा अहिसा रूप ।
हम जीवे जीवें सभी, सस्कृति यही अनूप ।।

४३ अनुचित स्वार्थ सुसाधना, पाप और अपराध ।
पर की उपकृति में, सदा समझो पुण्य अगाध ।।

४४ सब पर्यायो मे श्रेष्ठ है, यह मानव पर्याय ।
इसको विफल न कीजिये, धर्म सदा सुखदाय ।।

४५ हसादिक दुष्कर्म का, करो नही व्यवसाय ।
इनसे मन ही मोडिये, कितनी होवे आय ।।

४६ प्राणिघात मदिरा जनित, अरु मधु का व्यापार ।
मछली अडे मास का, क्रय विक्रय अधकार ।।

४७ इनसे मिश्रित वस्तु भी, है व्यापार अयोग्य ।
सात्विक जन उपयोग के, कभी न ये है योग्य ।।

४८ धन का व्यय उतना करो, जितनी होवे आय ।
कर्ज कभी करना नही, कर्ज सदा दुखदाय ।।

४९ सादा वेष भूषा धरो, सादा फैशन युक्त ।
सरल सकल व्यवहार ही, मायाचार विमुक्त ।।

५० मात-पिता गुरु आदि से, रही सदा सु-विनीत ।
उनकी सेवा नित करो, लो अविनय की जीत ।।

५१ सदा देशहित मे रहो, सब विधि से सलग्न ।
सम कुटम्ब सब को समझ, विश्व प्रेम मे मग्न ।।

५२ अपना भारत देश यह, कभी न हो परतत्र
सदा कार्य ऐसे करो, रहे सदैव स्वतन्त्र ।

५३ विश्व शाति का मूल है, परम अहिसा धर्म
कोई दु ख पावे नही, ऐसे करो सुकर्म ।

५४ यदि करते हो नौकरी, रिश्वत ग्रहण अयोग्य ।
वेतन जितना सा मिले, व्यय उतना ही योग्य ॥

५५ अति सचय मत कीजिये, यह है अति अपराध ।
परिग्रह का परिणाम ही, रखिये सदा अबाध ॥

५६ अति सचय का हेतु है, रिश्वत चोर बजार ।
सब पापो का मूल है, गल्त अत्याचार ॥

५७ नफा उचित ही लीजिये, क्रय विक्रय के मध्य ।
नाप तोल पूरा रखो, फल कल, यदि नहि अद्य ॥

५८ वस्तु श्रेष्ठ मे खोट का, जान मिलावट पाप ।
धन यदि कुछ प्राप्त हो, फिर होवे अति सताप ॥

५९ स्वामि सेवक मे रहे, सदा सुखद सबध ।
यदि दोनो कर्तव्य मे, नहीं रक्खे प्रतिबध ॥

६० भ्राता सुत सम समझिये, सेवक को नही अन्य ।
उसके दु ख को स्व दु ख, समझे वही स्वामि है धन्य ।

६१ सेवक का कर्तव्य है, स्वामि भक्ति मे लीन।
दोनो निज कर्तव्य के, रहे नित्य आधीन ॥

६२ जन रक्षण पोषण भरण, शासक का कर्त्तव्य।
स्वार्थ सिद्धि मे जो लगा, शासक वही अभव्य ॥

६३ एक तंत्र जन तंत्र ही, चाहे हो दल तत्र।
जनता मे सुख शांति हो, यदि वह नहिं सब परतंत्र ॥

६४ अनुग्रहीत हो शिष्ट जन, दुष्ट होय निगृहीत।
अन्न वस्त्र शिक्षा अगद, हो न महगे प्रतीत ॥

६५ राजा का यह धर्म है, करे न खुद व्यापार।
प्रजा का पालन करे, अपनी रखे सभाल ॥

६६ कर से जन शोषण न हो, राज्य प्रजा सतोष।
पिता पुत्र समभाव हो, नही परस्पर रोष ॥

६७ राज्य प्रजा दोनो सदा, करे न पापाचार।
धर्म नियन्त्रित राज्य हो, वैसा जन व्यवहार ॥

६८ इच्छाओ का रोकना, इच्छा सप्रतिबंध।
संतोषामृत के बिना कही नही आनन्द ॥

६९ ज्यो ज्यो इच्छाये बढे, त्यो त्यो पूर्ति उपाय।
हुई एक की पूर्ति, तो वाको करे अपाय ॥

७० बने जहा तक कम करो, इच्छाओ का भार।
इच्छाओ मे बस रहा, दुखो का ससार॥
७१ श्री महावीर की देशना, यह ही है सब सार।
सब सुख पावे विश्व मे, धारे यदि सागार॥
७२ अनागार का धर्म है, धरे महाव्रत भार।
ज्ञान ध्यान मे लीन हो, करे कर्म सघार॥

इति विवेक बहत्तरी सम्पूर्ण हुई

मंदालसा स्तोत्र

(रचयिता—आचार्य शुभचन्द्र)

(यह मदालसा स्तोत्र आचार्य शुभचन्द्र की अप्रतिम कृति है। वाह्य रूप से इस स्तोत्र मे किसी चेतन परमात्मा सिद्ध भगवान की स्तुति प्रतीत होती है और ऐसा लगता है कि यह सिद्ध भगवान की जयमाला है। यह स्तोत्र साहित्य मे सख्या दर्शक स्तोत्र गणना मे अष्टक पद्धति का स्तोत्र है। इसमे बताया है कि मानव जीवन मे माता का स्थान कितना महान और गौरव पूर्ण है। माता वच्चो को प्रारम्भ मे उत्तम सस्कारों द्वारा ही निर्माण कर सकती है। उत्तम सस्कार ही धर्म है। उस सस्कार के कारण ही मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है)

कथा

किसी देश मे एक राजा राज्य करते थे। उसके मदालसा नाम की रानी थी। उसका जैन धर्म मे महान दृढता और अगाध विश्वास था। उसकी आन्तरिक इच्छा थी कि मेरे जो भी सतान हो वह उत्तम धर्म का साक्षात उदाहरण वने। क्योकि धर्म के उपदेश मात्र से धर्म प्रचार नही होता है। धर्म स्वय आचरण करने वाले विश्वस्तो से ही धर्म का का रक्षण होता है। कहा - है 'धर्मो रक्षति रक्षत'। इसलिए वह जब भी वच्चा गर्भ मे होता भगवान का स्तोत्र-पाठ करती थी। वच्चो को दूध पिलाते, खिलाते, सुलाते, न्हवाते, झूलना झुलाते समय स्तोत्र पाठ करती थी।

उस रानी के छह वच्चे पैदा हुए और उन सभी ने धार्मिक सस्कारो के कारण योग्य काल मे भर यौवन अवस्था मे घर छोडने की प्रतिज्ञा की और मुनि दीक्षा ग्रहण करी। सभी वच्चो के गृह त्याग ने राजा वडा ही चिंतित हुआ कि अव राज गद्दी कैसे चलेगी। इसलिए राजा ने

रानी से पूछा कि "हमारे सब पुत्रो ने दीक्षा धारण कर ली है अब हमारा राज्य कैसे चलेगा?" तब रानी ने कहा कि "अबकी बार जो पुत्र होगा वह गद्दी पर बैठेगा।" राजा ने फिर पूछा, "यह कैसे सभव है कि वह राज गद्दी सभाल ही लेगा।" रानी ने कहा, "मैंने छह पुत्रो को गर्भ अवस्था मे ही धार्मिक सस्कार दिए अब सातवें पुत्र को ऐसा सस्कार कराऊगी जिससे वह राज्य कार्य कर सके।" राजा को बडा ही आश्चर्य हुआ और राजा ने रानी से फिर पूछा, "आप बतावें कि उन पुत्रो को कौन सा मत्र दिया था।" रानी ने इस स्तोत्र मे सिद्धात्मा के वैभव का वर्णन बडी योग्यता के साथ किया है। बालको मे ऐसी शक्ति विद्यमान है जो शुरू से या पूर्व जन्म के सयोग से वह शक्ति बडे से बडा कार्य कर सकती है। अत मन्दालसा रानी द्वारा प्रदत्त यह आत्म सन्देश केवल अपने पुत्र को ही नही, किन्तु ससार के समस्त बालको के लिए है। बाल्य-काल मे दिए हुए सस्कार दृढमूल कैसे होते हैं। यह इस स्तोत्र के माध्यम से बताया है।

मंदालसा स्तोत्र

सिद्धोऽसि बुद्धोऽसि निरजनोऽसि, संसार माया परिवर्जितोऽसि।
शरीर भिन्न स्त्यज सर्व चेष्टां, मन्दालसा वाक्यमुपास्सव पुत्र।१

अर्थ—माता मन्दालसा अपने पुत्र को ऐसे सस्कार प्रदान करना चाहती है जिससे अपना पुत्र आत्मा का वैभव जान लेवे। वह कहती है, हे पुत्र, तू सिद्ध है, अर्थात आत्मा की जो विशुद्ध अवस्था है, वह तेरा स्वरूप है। अनत दर्शन ज्ञान, सुख और अनन्त वीर्य इत्यादि शक्तियो से परिपूर्ण है। तू बुद्ध है। जो भी जानने योग्य है वह तूने जान लिया है। तू सर्वज्ञ है। तू निरजन है--मल रहित है। ससार की माया से

रहित है। ससार की क्षणिकता तुझमे नही है । तू इस शरीर से भिन्न है, इसलिए अन्य क्रियाओ की झझट से विरक्त हो। इस प्रकार तेरी माता तुझे कह रही है। तू मुनिव्रत धारण कर, कर्मों को नष्ट कर परमात्मा बनना यह तू ध्यान मे रख।

ज्ञातासि दृष्टासि परमात्म रूपी ।
अखण्डरूपोऽसि गुणालयोऽसि ॥
जितेन्द्रियस्त्व त्यज मान मुद्रां ।
मदालसा वाक्य मुपास्स्व पुत्र ॥२॥

अर्थ—हे पुत्र! तेरा स्वभाव ज्ञानमय है। जडता इस शरीर मे है । तू निश्चय से इससे अलहदा है। ससार के चराचर पदार्थो की जानने के शक्ति तुझमे है । तू इस ज्ञान शक्ति के कारण ही महान है। तू द्रष्टा है, देखने वाला है। विवेकी है। सत्य और असत्यता का भेद जानने वाला है। तू परमात्मस्वरूप है, स्वभाव मे अखण्ड है । तू सब गुणो का स्वामी है। इसलिए हे पुत्र! संसार की सब झूठी माया से मुंह मोड़ कर, मुनि बनकर, कर्म नष्ट कर परमात्मा बनना। इस उपदेश को स्वीकार करना।

शांतोऽसि दांतोऽसि विनाशहीन। सिद्ध स्वरूपोऽसि कलक मुक्तः।
ज्योतिः स्वरूपोऽसि विमुंच मायां। मन्दालसा वाक्यमुपास्स्व पुत्र।३

अर्थ—हे पुत्र! तेरा स्वभाव शान्तिमय है, क्योकि क्रोध, मान माया, लोभ व काम इस जीव के वैरी हैं। इनके त्याग से ही जीव ऊचा उठता है और तेरा स्वरूप विनाश से रहित है अर्थात अविनाशी, अनन्त एवं सतस्वरूप है। सिद्ध रूप है

निरंजन रूप, ज्योति रूप है ससार के कर्म रूपी कलक से तू विमुक्त है। ऐसा पक्का विचार कर मुनिव्रत धारण कर, कर्म नष्ट कर सिद्ध अवस्था को प्राप्त कर ले यही उपदेश समझ कर ग्रहण करना।

एकोऽसि मुक्तोऽसि चिदात्मकोऽसि
चिद्रूप भावोऽसिचिरतनोऽसि ।
अलक्ष्य भावो जहि देह मोहम् ।
मन्दालसा वाक्य मुपास्स्व पुत्र ॥४॥

अर्थ—हे पुत्र ! तू किसी के आश्रित नही। इसलिए तेरा स्वरूप एकत्व है। तू ससार के बधनो से मुक्त है। तेरा स्वरूप चिन्मय है। तेरे भाव चित्स्वरूप है। तू चिरतन है। तू शरीर के मोह को छोड शीघ्र मुनि बन कर्म नष्ट करना।

इस शरीर को प्राप्त कर महा तप करना यही सार है। यह मेरा वचन स्वीकार कर।

निष्काम धामासि विकर्म रूपो। रत्नत्रयात्मासि परं पवित्र।
येत्तासि चे तोऽसि विमुञ्चकाम। मदालसा वाक्य मुपास्स्व पुत्र।५

अर्थ—हे पुत्र ! सब इच्छाए निकलजाने से तू तेजस्वी है, तू कर्म निकल जाने पर विकर्मा है। तेरा, स्वभाव रत्नत्रय मय है, तू परम शुद्ध है। तेरा स्वभाव मोह से रहित है तेरा असली स्थान सिद्ध शिला है। अतः उस असली स्थान मे पहुंचने का यत्न कर।

देखो इस जीव ने ससार कीचड मे फस नर्क, निगोद के दुःख भोगे, तिर्यंच गति में एक इन्द्रिय पृथ्वी काय, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति काय धारण किया। त्रस मे दो इन्दिय, तीन इन्द्रिय, चतु इन्द्रिय, पच इन्द्रिय असैनी हुआ। गधा, घोडा, ऊंट विलाव हो भटकता ही फिरा। अब कोई विशेष पुण्य से श्रावक कुल मिला। अब अपना स्वभाव सिद्धो के समान जानना यही मेरा कहना है सो स्वीकार कर।

प्रमाद मुक्तोऽसि सुनिर्मलोऽसि । अनन्त बोधादि चतुष्टयोऽसि।
ब्रह्मासि रक्षस्व चिदात्म रूपम् । मदालसा वाक्य मुपास्स्व पुत्र ।६।

अर्थ—हे पुत्र ! तूने प्रमाद रूपी शत्रु का नाश कर कलक को भगा दिया है। इसीलिए अनन्त ज्ञान, अनत दर्शन, अनन्त सुख और अनत वीर्य इनकी प्राप्ति तुझे हुई है। तू ब्रह्म रूप है, सिद्ध रूप है, परिपूर्ण है। इसलिए अपने चैतन्य रूप आत्म स्वरूप की रक्षा करना तेरा परम कर्त्तव्य है। इन विचारो के द्वारा तू परमात्मा पद प्राप्त कर सकेगा। ऐसा मदालसा अपने पुत्रो को शिक्षा दे रही है।

कैवल्यभावोऽसि निवृत्त योगी । निरामयी ज्ञात समस्त तत्वः ।
परमात्मवृत्तिस्स्मर चित्स्वरूपम् । मंदालसा वाक्य मुपास्स्व पुत्र।७।

अर्थ—हे पुत्र ! केवलज्ञान तेरा निज स्वरूप समझ। तू मन वचन काय की चचलता से रहित ऐसा योगी है। तू रोग रहित है। तूने ससार की अवस्था देख ली है। तू परमात्मा की वृत्ति को धारण कर मोक्ष प्राप्त कर। ऐसा मेरा वचन मान ले।

चैतन्य रूपोऽसि विमुक्तमारोऽभावा विकर्मासि समग्रवेदी ।
ध्याय प्रकाम परमात्म रूपम् मदालसा वाक्य मुपास्स्व पुत्र ।८।

अर्थ—हे पुत्र ! तेरा स्वभाव ज्ञान-दर्शनमय चैतन्य स्वरूप है । तूने कामेच्छा से अपना पिंड छुड़ाया है । तू द्रव्य-कर्म, भाव कर्म, नो कर्म रहित होने से केवलज्ञान ज्योति का स्वामी बन । ऐसा ध्यान कर जिससे शीघ्र मुक्ति प्राप्ति होवे । ऐसा मेरा वचन मान ।

भावार्थ— देख, इस जीव ने ससार अवस्था मे पाच परिवर्तन कर अनत ससार भ्रमण करा । चौरासी लाख योनियो मे मारा-मारा फिरा । अब यह दाव पुण्य उदय से मिला । वीतराग देव की वाणी हृदय में धारण कर महामन्त्र का जाप कर कर्म काटकर परमात्मपद प्राप्त कर ले यही सार है ।

इत्यष्टकैर्या पुरस्तन्जान् , विवोध्वनार्थं नरनाथ पूज्य ।
प्रावृज्य भीता भवभोग भावात् स्वकैस्तदासौ सुगति प्रपेदे ।६।
इत्यष्टक पापपराड्मुखोयो मदालसाया भणति प्रमोदात् ।
स सद्गति श्रीशुभचन्द्र भासि सम्प्राप्य निर्वाण गति प्रपद्येत् ।१०।

विशदार्थ—इस प्रकार मंदालसा ने अपने पुत्र के आत्म कल्याण के लिए उपदेश दिया । जिससे वस्तु का सत् स्वरूप पाप और पुण्य का भेद, तत्व और अतत्व का विचार, राग और विराग परिणति का भेद, ससार और निर्वाण की अवस्था का दर्शन अपने पुत्र को मदालसा माता करा रही हैं । यद्यपि

पुत्र तो राजपुत्र क्षत्री है और समस्त भोग सम्पदाओ सहित हैं फिर भी माता का कल्याणमई उपदेश ग्रहण कर ससार के क्षण भगुर पदार्थो से मोह हटाकर मुनि दीक्षा धारण की और अपने शुद्ध विचारो से सदा के लिये अनतानत सुख के भोक्ता बने।

इस प्रकार के उपदेश से केवल राजपुत्र ही नही, अपितु जो भी अपनी आत्मा को पर पदार्थों से भिन्न करे और आत्म वैभव को पिछाने वह समस्त पापो से मुक्त होकर चन्द्रमा के समान शुभ्र अवस्था निर्वाण सुख को प्राप्त करता है ऐसा श्री शुभचन्द्र आचार्य देव कहते है। जो प्राणी इस मन्दालसा स्तोत्र को भाव से पढेगा और इस पर त्रियोग से धारण करेगा वह अवश्य मुक्ति को प्राप्त होगा—ऐसी माता और ऐसा पुत्र जयवन्त हो।

●

महावीर की अमर कहानी

(कविवर श्री वैद्यराज प० राजेन्द्रकुमार 'कुमरेश' चदेरी)

आशा के वलिदान चढाये, करदी रे सुख की कुर्बानी।
वैभव पैरो से ठुकराया, जगल चला, छोड रजधानी॥
जला गया जीते जी अपने अपनी, अपने हाथ जवानी।
युग-युग तक ससार कहेगा, महावीर की अमर कहानी॥
पायो रे निर्वाण वीर ने पायो रे निर्वाण॥ १॥

नही वनाये स्वप्न चाह के, कभी न मुख से आह निकाली।
कहा सुना तव तक न किसी से,जवतक सुख की थाह न पाली ॥
रहा मस्त अपने ही पन मे, वना और अपना ही ध्यानी।
युग युग तक ससार कहेगा, महावीर की अमर कहानी ॥
पायो रे निर्वाण वीर ने पायो रे निर्वाण ॥ २ ॥

लगा विपति से होड नित्य ही, सीने पर सकट डट झेला।
डरा न कापा, रोया, घोया, आख मिचौनी यम से खेला ॥
होम दिया जीवन हस हस कर, तन की मन की एक न मानी।
युग युग तक ससार कहेगा, महावीर की अमर कहानी ॥
पायो रे निर्वाण वीर ने पायो रे निर्वाण ॥ ३ ॥

दुनिया हसी तालिया पीटी, ताने कसे, कहा दीवाना।
और स्वय यह दीवानी से, करता रहा सदा मन मानी ॥
हार जीत की इस बाजी को जीत गया बन केवल ज्ञानी।
युग युग तक ससार कहेगा महावीर की अमर कहानी ॥
पायो रे निर्वाण वीर ने पायो रे निर्वाण ॥ ४ ॥

स्वय रहा निस्वार्थ, स्वार्थ की जलती हुई बुझादी ज्वाला।
और स्वय बढकर दुनियां की, उसने पिलादी हाला ॥
दिखा गया जग झुका सकेगा, केवल एक अकेला प्राणी।
युग युग तक ससार कहेगा महावीर की अमर कहानी ॥
पायो रे निर्वाण वीर ने पायो रे निर्वाण ॥ ५ ॥

॥ श्री महावीराय नम ॥

महावीर निर्वाण

(श्री राधामोहन जैन)

वर्धमान सन्मति महा, वीर महा अति वीर।
वीर प च जिस नाम सो, नैमो अत जिन धीर ॥

श्री १००८ तीर्थंकर भगवान महावीर आज से लगभग २५७१ वर्ष पहिले चैत्र शुक्ल त्रयोदशी को परम पवित्र मगलमयी पुण्य वेला मे इसी भारत वसुन्धरा के बिहार प्रान्तीय कुण्डलपुर के अधिप महाराज सिद्धार्थ की महारानी त्रिशला देवी की कोख से जन्मे थे। स्वर्गों के देवो ने आकर इनका गर्भ तथा जन्म कल्याणक वडे उत्साह के साथ मनाया। माता पिता के कहने पर भी मोह ममता के बन्धन मे न पड कर बाल ब्रह्मचारी ही रहे और ३० वर्ष की अवस्था मे ही सन्यास ले लिया। घोर तप किया, केवल ज्ञान प्राप्त किया।

इधर सारे भारत मे यज्ञ हिसा को धर्म का बाना पहना कर केवल मूक पशुओ को ही नही परन्तु मानवो तक को अग्नि में मन्त्राहुति पूर्वक होम कर स्वर्ग पहुचाने का सरल मार्ग कुछ स्वार्थन्धो ने प्रचलित कर रखा था। जो दिन दूना रात चौगुना वढ रहा था, जिसने सारे भारत मे यत्र तत्र सर्वत्र त्राहि त्राहि की पुकार सुनाई पड रही थी। साथ ही सारे भारत मे सामाजिक उथल पुथल, नीच ऊच की भेद भावना, छुआ छुत का दौर आपसी कलह फैला रही थी।

इस प्रकार का वातावरण देखकर वीरप्रभु के हृदय को ठेस पहुँची। दया अहिंसा मन मे उमड आई और जनता का दु ख दूर करने का प्रण किया।

शूर वीरता के माथ और निर्भयता के साथ अहिंसावाद, सनाज वाद और साम्यवाद के अस्त्रो को लेकर मैदान मे आ डटे। जनता ने साथ दिया, जिससे मारे भारत वर्ष मे अहिंसा, सत्य अचौर्य, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह का डका वजा दिया। ३० वर्ष की आयु मे ही साधु वन गये। १२ वर्ष ५ माह और १५ दिन के पश्चात घोर तपस्या द्वारा केवल ज्ञान प्राप्त किया। मारे भारतवर्ष मे घूम-घूम कर जैन धर्म का प्रचार किया और सारी बुराइयो को दूर कर दिया।

ससार के दु खो से छुडाकर मोक्ष के सुख को प्रदान करने वाले धम का उपदेश दिया। इस प्रकार २९ वर्ष ६ माह और १५ दिन तक धर्मामृत की वर्षा से देव मनुष्य और पशुओ को सन्तृप्त किया।

तत्पश्चात वे भगवान विहार प्रान्त के पावापुरी से कातिक कृष्णा अमावस्या के प्रभात मे अपनी आयु के ७२ वर्ष पूर्ण करके सर्व कर्मों से विमुक्त हो अविनश्वर निर्वाण लक्ष्मी के अधिपति वने।

इस अभूतपूर्व एवं अश्रुत पूर्ण तथा अननुभूत निर्वाण लक्ष्मी की प्राप्ति के हर्षोपलक्ष मे तत्काल असख्य देवो एव मानवो ने यथा शक्ति-भक्ति के अनुसार दीपमालिका प्रज्वलित कर अपनी असीम हार्दिक श्रद्धा को भगवान महावीर स्वामी के श्री चरणो मे अर्पित की। दीपक ज्ञान का प्रतीक है इसलिए दीपक जलाकर ज्ञान-ज्योति का उत्सव मनाया। श्री १००८ भगवान महावीर स्वामी को लक्षकर अमावस्या के प्रभात मे दीपावली महोत्सव मनाया गया। इसके वाद इसी कार्तिक कृष्ण अमावस्या के सायकाल मे भगवान के प्रधान गणधर गौतम इन्द्र भूति महाराज को केवल ज्ञान रूपी महालक्ष्मी प्राप्त हुई। अत इन्द्र आदि देवो ने राजा एव अमीर-गरीब मानवो ने आकर वडी सज-धज एव धूम-धाम के साथ हर्षोल्लास के वातावरण मे दीपमालिका को

प्रज्वलित कर केवलज्ञान महा लक्ष्मी की पूजा की । और मोक्ष प्राप्ति के लिये प्रभु की पर्याप्त प्रशसा की ।

अन्त मे सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के लिये मैं भगवान महावीर स्वामी को बार-बार नमस्कार करता हूँ और उनके बताये मोक्ष मार्ग का सेवन करना चाहता हूँ। हे भव्य प्राणियो ! धर्म का पालन करते हुये, भगवान महावीर का उपदेश मानते हुए पाचो पाप (हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील तथा परिग्रह) का त्याग करो और मोक्ष पथ पर लग जाओ ।

आज भारतवर्ष मे भगवान महावीर स्वामी का २५०० वा निर्वाण महोत्सव बडे उत्साहपूर्वक मानाया जा रहा है। यह जब ही सार्थक होगा जब हम सब उनकी वाणी पर विश्वास करते हुये अपनी आत्मा का कल्याण करें और जिनवाणी का प्रचार करें ।

तुमसे लागी लगन, लेलो अपनी शरण, पारस प्यारा ।
मेटो मेटो जी सकट हमारा ॥ टेक ॥

निश दिन तुमको जपू, पर से नेहा तजू ।
जीवन सारा, तेरे चरणो मे बीते हमारा ॥ १ ॥

अश्वसेन के राज दुलारे, वामा देवी के सुत प्राण प्यारे ।
सबसे नेहा तोडा, जग से मुह को मोडा, संयम धारा ॥ २ ॥

इन्द्र और धरणेन्द्र भी आये, देवी पद्मावती मगल गाये ।
आशा पूरो सदा, दुःख नहिं पावे कदा, सेवक थारा ॥ ३ ॥

जगके दुखकी तो परवाह नही है, स्वर्ग सुखकी भी चाह नही है ।
मेटो जामन-मरण, होवे ऐसा यतन, पारस प्यारा ॥ ४ ॥

लाखो बार तुम्हे शीश नवाऊ, जग के नाथ तुम्हे कैसे पाऊं ।
'पकज' व्याकुल भया, दर्शन बिन ये जिया, लागे खारा ॥ ५ ॥